१

स्वास्थ्य कैसे पाया?

आरोग्य मंदिर प्रकाशन

आरोग्य-ग्रंथमाला–९

स्वास्थ्य कैसे पाया ?

[रोगमुक्तिके स्वानुभव]

संपादक

विट्ठलदास मोदी

आरोग्य-मंदिर-प्रकाशन

हिन्दी [illegible] एजेन्सी
[illegible]–१

मुख्य विक्रेता : सस्ता साहित्य-मंडल, नई दिल्ली

प्रकाशक
आरोग्य-मंदिर
गोरखपुर

पहली बार : मार्च १९५३, ५०००
दूसरी बार : जनवरी १९५७, ५०००
मूल्य : डेढ़ रुपया

मुद्रक
सम्मेलन मुद्रणालय
प्रयाग

प्रकाशकीय

मनुष्य प्रकृतिकी संतान होते हुए भी उससे दूर हटकर, उससे अपना नाता तोड़कर अपनी परिमित बुद्धिसे वर्तमान सभ्यताका जो ताना-बाना जोड़ता रहा है वह उसके व्यावहारिक जीवनमें भले ही सहायक होता हो, पर मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्यके क्षेत्रमें प्रवेश कर उसने विषम पाशका रूप धारण कर लिया है जिससे वह उसके लिए वरदानके बदले भयंकर अभिशाप ही बन गया है। उसमें उलझनेपर—रोगका शिकार होनेपर—वह उसीके अंदर हाथ-पैर मारता और छुटकारेके लिए उसीके सूत्रोंका सहारा लेता है जिससे वह मुक्त होनेके बजाय और उलझता ही जाता है।

स्वास्थ्यका रक्षण करनेवाली प्राकृतिक शक्ति शरीरके ही अंदर निहित है और प्राकृतिक नियमोंके उल्लंघनके कारण इसके मंद पड़नेपर ही शरीरपर रोगोंके आक्रमण होते हैं, पर इसका तात्त्विक ज्ञान न होनेके कारण मनुष्य इस तथ्यकी ओर ध्यान न देकर रोगके निवारणके लिए कृत्रिम साधनों—औषधों—का सहारा लेता और इस प्रकार प्रकृतिके नियम और कार्यमें हस्तक्षेप करता है जिसका वह कठिनतर रोगके रूपमें दंड देती है। इस शक्तिके उद्दीप्त होनेपर ही रोगका निवारण हो सकता है और यह कार्य प्राकृतिक नियमों और साधनोंके ही द्वारा संपन्न भी हो सकता है, अन्य प्रकारसे नहीं। इसलिए औषधादि कृत्रिम साधनोंद्वारा आरोग्यलाभका प्रयत्न करना बबूलसे आमकी आशा करनेके समान ही निरर्थक होता है।

प्राकृतिक चिकित्सा प्राकृतिक साधनोंके ही द्वारा पूर्ण आरोग्य प्रदान करती है और मनुष्यका जीवनसंबंधी दृष्टिकोण बदलकर उसे ऐसे सांचेमें ढाल देती है जिसमें उसका स्वास्थ्य और सुख आजीवन सुरक्षित बना रहता है। चिकित्साका मूल सिद्धांत तो मानव-जातिकी ही तरह प्राचीन

है, पर उक्त साधनोंके प्रयोगकी विधि अर्वाचीन, किंतु विस्तृत अनुभवोंके आधारपर निर्मित हुई है जिससे इसे उपचारकी एक विशिष्ट पद्धतिके रूपमें मान्यता प्राप्त हुई है। इस मान्यताका विशिष्ट कारण इसका चमत्कारपूर्ण प्रभाव ही हैं जिसने औषधोपचारसंबंधी प्रचलित विश्वासोंको भ्रमपूर्ण सिद्धकर स्वास्थ्य-जगत्को एक ऐसे अच्छे मार्गका प्रदर्शन किया हैं जिसपर गमन करनेमें कहीं किसी प्रकारका संकट प्रस्तुत होनेकी संभावना नहीं हैं।

किंतु कठिनाई यह हैं कि मनुष्यकी प्रवृत्ति स्वभावत: रूढ़िवादकी ओर होती है, वह नये विषयको संदेहकी दृष्टिसे देखता हैं और प्रचलित विश्वासोंका त्याग करनेका जल्द साहस नहीं करता, जिस मार्गसे लोगोंको जाते देखता आया हैं उसीको ग्रहण करनेमें अपना कल्याण समझता हैं—भले ही वह मार्ग उसे विनाशकी खाईंकी ही दिशामें क्यों न ले जाता हो। मनुष्यकी यही मनोवृत्ति प्राकृतिक चिकित्साकी प्रभावकारिताका विश्वास होनेपर भी उसे इस ओरसे विरतकर औषधोपचारका मार्ग अपनानेके लिए प्रेरित करती हैं जिससे वह स्वास्थ्यलाभके सर्वोत्तम साधनसे वंचित होकर मरीचिकाके पीछे दौड़ता रहता हैं, पर उसे जीवनसे कभी कहीं भेंट नहीं होती—वास्तविक स्वास्थ्य स्वप्नका ही विषय बना रहता हैं।

ऐसे लोगोंके विश्वास और साहसको बल प्रदान करनेमें रोगियोंके निजी अनुभव विशेष रूपसे सहायक होंगे, इसी विचारसे प्रेरित होकर कुछ ऐसे रोगियोंके अनुभवोंका संग्रह पुस्तकके रूपमें प्रस्तुत किया जा रहा है जो इस चिकित्साके द्वारा कठिन रोगोंसे छुटकारा पाकर पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त करनेमें सफल हुए हैं। अगर इस प्रकारके अनुभव एकत्र किये जायं तो उनकी संख्या हजारों ही नहीं, बहुत अधिक हो जायगी, पर पुस्तकका कलेवर बढ़ाना अभीष्ट न होनेके कारण सिर्फ थोड़ेसे अनुभवोंका संग्रह किया जा रहा हैं। जो लोग हर तरहका उपचार कराकर थक गये हैं, रोग असाध्य करार दिया जा चुका हैं और चारों ओर नैराश्यका घोर अंधकार छाया हुआ है उनके लिए यह संग्रह आशाकी किरण प्रमाणित होगा और उन्हें विश्वास हो जायगा कि प्रकृति-माताकी शरणमें जानेपर

वह अवश्य आश्रय देगी और सारे कष्टोंका निवारणकर नवजीवन प्रदान करेगी।

जिन सज्जनोंने हमारी 'रोगोंकी सरल चिकित्सा' पुस्तकका अध्ययन कर चिकित्साविषयक सिद्धांतोंका ज्ञान प्राप्त कर लिया हैं उनके लिए भी यह संग्रह वड़े कामका होगा। सिद्धांतसे समुचित लाभ उठानेके लिए उसके दूसरे पक्ष—क्रियात्मक रूप—का भी ज्ञान होना आवश्यक हैं। हमें आशा ही नहीं, विश्वास भी हैं कि वे इसके सहारे उन सिद्धांतोंको व्यवहारमें लानेकी विधि भलीभांति समझ जायेंगे, उनकी प्रयोगसंवंधी सारी कठिनाइयां दूर हो जायंगी और उन्हें अंधकारमें नहीं भटकना पड़ेगा। इस प्रकार यह संग्रह रोगियों और प्रयोगकर्ताओं—दोनोंके लिए समान रूपसे उपयोगी होगा, और इसीमें इसके प्रकाशनकी सार्थकता भी हैं।

प्रकाशक

विषय-सूचा

१. कब्ज—श्रीजीवानंद श्रीवास्तव १

श्रीमती तारा पाण्डेय ९

२. अपच—श्रीमुरलीधर पांडेय व्या० सा० धर्मशास्त्राचार्य १०

३. अग्निमंदता—श्रीपूरनमल अग्रवाल १२

४. स्वप्नदोष—श्रीनारायण भट्ट १६

५. खुजली—श्रीमती रविकादत्त २०

६. खांसी, रक्ताल्पता (अनीमिया) और संग्रहणी—

श्रीसत्यनारायण झुंझनूवाला २५

७. उकवत—श्रीदयाराम गुप्त ३०

८. दमा और गठिया—श्रीरामलखन गुप्त ३६

९. दमा—श्रीचंद्रभूषण उपाध्याय, एम० ए०, शास्त्री ४२

१०. संग्रहणी—श्रीभोलानाथ ५७

श्रीरामलाल ६३

श्रीछकौड़ीप्रसाद ६८

११. कृमि—श्रीरमणरेतबिहारी त्रिपाठी, एम० ए० ७३

१२. नाड़ी-विकार—श्रीदेवकीनंदन शर्मा ७६

१३. चिंता—श्रीहीरालाल सराफ, एम० एल० ए० ८२

श्रीनरोत्तमप्रसाद साहा ८४

१४. टांसिल—श्रीप्रियनाथ भट्ट ८७

१५. सूजाक—श्रीगोविंदराम खेतान ९१

१६. मोटापा—श्रीओमप्रकाश गर्ग ९७

१७. फाइलेरिया—श्रीरत्नेश्वरीनंदन सिंह १०१
श्रीरासविहारी सिंह १०३
१८. आमाशयका घाव—(रायवहादुर) श्री पी० एन० घोष १०५
एल्फ्रेड वलवंत विक्टर १०९
१९. मलेरियाका असर—श्रीहरिलाल आर्य ११५
२०. जीर्ण ज्वर—श्रीत्रिवेणीप्रसाद १२०
२१. मुंहसे खून—श्रीमती शकुंतला देवी १२७
२२. हैंजा—श्रीपंचमलाल आर्य १३३
२३. अपेंडिसाइटिस—प्रो० केशवप्रसादसिंह, एम० ए० "विशारद" १३८
२४. गठिया—श्रीहीरालाल अडूकिया १४५
श्रीप्रेमचंद्र अग्रवाल १४८
२५. ववासीर—श्रीमती मायादेवी १५३
श्रीरामानुजदास भूतड़ा १५५
२६. पैर सीधा हो गया—डॉ० सत्यप्रकाश,
एम० एस-सी०, डी० एस-सी० १५९
२७. गर्भपात—श्रीमती पुष्पा तोशनीवाल १६३
२८. पेटका दर्द—श्रीमती कमलादेवी राठी १६७
श्रीभूषणप्रसाद १७४
२९. आंव और ज्वर—श्रीजयदेव सिंह १७७
३०. मीयादी वुखार—श्रीआनंदप्रकाश जैन १८१
श्रीमती सरस्वतीदेवी पांडेय १८५
३१. भगंदरसे छुटकारा—श्रीविश्वनाथप्रसाद १९०
३२. विविध—श्रीआनंदवर्धन १९५
श्रीश्यामदेव देवड़ा २०३
श्रीविट्ठलदास मोदी २०६

स्वास्थ्य कैसे पाया ?

: १ :

कब्ज

कब्ज साधारण रोग समझा जाता है पर वह बढ़ने पर कितना कष्टकर हो जाता है और किन-किन रोगोंको जन्म दे सकता है यह बहुत कम लोग ही जानते हैं। मैं भी नहीं जानता था। जब मैंने कभी-कभी रह जानेवाले कब्जपर ध्यान नहीं दिया तो हालत यहांतक पहुंची कि सुबह-शाम शौच जाते रहनेपर भी, शौचालयमें घंटों बैठे रहनेपर भी, दो-दो दिन शौच नहीं होता था और अगर होता तो भी बड़े कष्टके साथ और उससे तबीयत जरा भी साफ नहीं होती थी। इच्छा होती शौच और हो और यह इच्छा तीव्र आवश्यकताकी तरह हर क्षण बनी रहती। फिर बतलाइए ऐसा आदमी काम कैसे कर सकता है, कैसे चैनकी सांस ले सकता है। फिर भी मैं सोचता रहता कि कब्ज स्वयं चला जायगा पर जब मेरी प्रतीक्षा चरम सीमापर पहुंच गई और मनोकामना पूरी होनेका लक्षण नहीं दिखाई दिया तो डाक्टरोंकी शरणमें गया। आज तो मेरी समझमें आता है कि कब्ज जाता कैसे, मैं उसके जानेकी केवल प्रतीक्षा कर रहा था, रहन-सहन, भोजन-पान, कब्जसे मुक्ति पानेके लिए जिनके सुधारकी सख्त जरूरत है, उनके सुधारनेकी विधिसे न तो मैं परिचित था और न मैं इस ओर अग्रसर ही हुआ।

डाक्टरोंने दवाएं दीं, उनमें होमियोपैथ भी थे और एलोपैथ भी। वे दवा दे देते और किसी प्रकारके भोजन-सुधार आदिके लिए एक शब्द भी न कहते। मैं तो पूछता ही क्यों ?

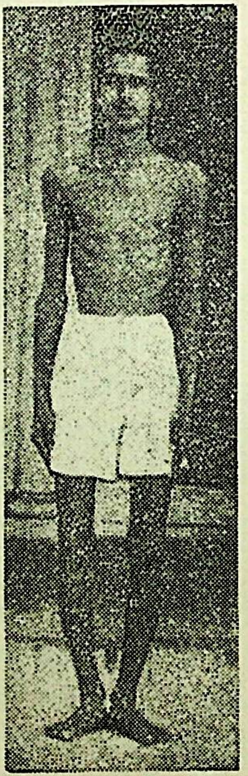

लेखक : चिकित्साके पहले

मैं समझता हर रोगकी दवा है, दवा रोगका निवारण करती है, मेरा कब्ज भी हरेंगी। इस विश्वाससे उनकी दवा भक्तिपूर्वक लेता रहता। होमियोपैथीकी दवा महीनेभर लेते रहने-

पर भी कोई सुधार न दिखाई दिया, पर एलोपैथीकी दवा कुछ करतब करती। कुछ नहीं बहुत करती। उसके लेनेपर

लेखक : स्वस्थ होनेपर

ज्यों-त्यों पेट साफ हो जाता पर दवा लेना बंद करनेपर हालत वैसी क्या उससे भी बुरी हो जाती। इस तरह मैं कब्जकी दिशामें तो जहां-का-तहां रहा, हां, और तरहसे हालत ज्यादा

बिगड़ने लगी। वजन तेजीसे गिरने लगा। थोड़ा भी चलनेमें सहारा लेनेकी इच्छा होती और लगता मैं बिना गिरे गंतव्य स्थानतक न पहुंच सकूंगा। हँसना तो मेरा बिल्कुल बंद हो गया था। प्रयत्न करनेपर भी हँसना दूर, मुस्करा भी न सकता। किसीसे थोड़ी भी बात करनेपर मैं गुस्सा हो जाता, कड़ा पड़ जाता। खैरियत थी कि मेरे पीले मुख, कृश शरीर, अल्प शक्तिको देखकर लोग जान जाते कि मैं बीमार हूं, अन्यथा मेरी तेजीके लिए मुझे जरूर ही कई बार पिटना पड़ता। पर धीरे-धीरे हालत यहांतक पहुंची कि मुझे किसीसे बोलना अच्छा न लगता। कोई बात करता तो मैं वहांसे भाग खड़ा होता। पर जाऊं कहां, कहीं भी तो चैन मिलती दिखाई नहीं देती। सोनेपर न आराम मालूम होता न नींद ही आती। आंखों-आंखोंमें रात समाप्त हो जाती और मैं देखता कि दूसरा दिन आरंभ हो गया है।

बस, एक ही तरहका खयाल मनमें चला करता मैं और मेरा कब्ज, मैं और मेरे रोग।

दवाओंसे ऐसी हालत पहुंचनेपर दवाओंसे मैं निराश हो गया। वह होना ही था पर कोई रास्ता भी तो न था। ऐसी दशामें मुझे कई लोगोंने प्राकृतिक चिकित्सा करानेकी राय दी। गो मैं स्थानीय प्राकृतिक चिकित्सालय आरोग्य मंदिरसे परिचित था—इतना ही कि प्राकृतिक चिकित्सालयके बड़े बाग और उसके फैलावने उधरसे टहलने जाते वक्त मुझे आकर्षित किया था पर मैं जानता नहीं था कि प्राकृतिक चिकित्सा क्या है ? जानता भी कैसे, प्राकृतिक चिकित्सा-संबंधी साहित्य या किसी प्राकृतिक चिकित्सकसे मिलनेका कोई अवसर ही न मिला था। पर मैंने इस चिकित्सा-पद्धतिको भी आजमानेकी

ठानी सिर्फ इसलिए कि दवासे हार चुका था और बैठे-बैठे जान देनेसे कुछ करना मुझे ज्यादा श्रेयस्कर प्रतीत हुआ।

मैं आरोग्य-मंदिर गया। उस समय चिकित्सक महोदय अन्य स्वास्थ्यार्थियोंको देखनेमें लगे थे। पास बैठे एक व्यक्तिसे बात होने लगी। उसके पूछनेपर मैंने अपना रोग कब्ज बतलाया तो वे कहने लगे यह रोग तो यहां पांच-सात दिनमें ही चला जायगा। उनके जवाबको सुनकर मुझे खुशी नहीं हुई, बल्कि गुस्सा आया कि वह मेरे रोगको साधारण समझता है जब कि यह बड़े-बड़े डाक्टरोंको परास्त कर चुका है और मैं इससे बराबर लोहा लेते रहनेपर भी हार चुका हूं और तबीयत हुई कि उसे एक चपत लगा दूं। पर इतनेमें ही चिकित्सक महोदय आ गए और मुझे अपने कमरेमें ले गए। दस मिनटमें ही मुझे उनकी बातोंसे इसका निश्चय हो गया कि मेरा कब्ज सचमुच शीघ्र चला जायगा। उस व्यक्तिके प्रति मनमें क्रोध पैदा होनेके कारण मनमें क्षोभ हुआ। मैंने चिकित्सक महोदयसे अपने रोगनिवारणके लिए एक कार्यक्रम मांगा तो उन्होंने कहा कि प्राकृतिक चिकित्सा तो जीवन-शिक्षण है, अच्छा हो आप यहां सप्ताहभरके लिए आ जायं। मुझे भी वैसी साफ-स्वच्छ जगहमें रहनेका आकर्षण हुआ और मैंने वहीं बैठे-बैठे अपने साथ आए व्यक्तिसे घरसे जरूरी सामान मंगवा लिया।

दोपहर हो रही थी, चिकित्सक महोदय मुझे अपने साथ भोजन करने लिवा ले गए। मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वे भी हम लोगोंके साथ भोजन कर रहे हैं। तब मेरी समझमें आया कि जो भोजन रोगका निवारण कर सकता है वह स्वस्थको और अधिक स्वस्थ बना सकता है।

भोजन आया, रोटियां थीं और थीं उबली हुई बहुत-सी

तरकारियां और कुछ कच्ची तरकारियां। मैं सोचने लगा यह भोजन खाया कैसे जायगा। पर जब मैंने देखा कि मेरे चारों ओर बैठे बीसों व्यक्ति इस भोजनको प्रसन्नता और तृप्तिकी दृष्टिसे देख रहे हैं और कर रहे हैं तो मैंने भी आरंभ किया। और मुझे कहना चाहिए कि यह भोजन एक तरहसे मैंने स्वाद लेकर किया। पर दिन-दिन इस भोजनका स्वाद तेजीसे बढ़ा और तीन-चार दिनमें वह इतना स्वादिष्ट लगने लगा कि मुझे पछतावा होने लगा कि इस भोजनसे मैं पहले क्यों न परिचित हुआ।

यही भोजन मुझे शामको भी मिलता। सबेरे मिलता एक गिलास गायका कच्चा दूध और साथमें दो संतरे और दोपहरके बाद तीन बजे मैं एक-दो संतरे या एक-दो टमाटर खाता।

चिकित्सामें मुझे केवल सबेरे-शाम तीन-तीन मिनटका कटिस्नान बताया गया और उसके बाद धीरे-धीरे एक-डेढ़ मील टहलना। साथ-साथ मुझपर मालिश, गरम पानीके कई तरहके नहानों और आगे चलकर आसन तथा कई तरहकी हल्की कसरतोंके प्रयोग हुए।

दो-तीन दिनमें ही मुझे दोनों वक्त शौच होने लगा। दस दिन पूरे होते-न-होते मेरे मुंहके छाले, जिनकी वजहसे खाना मुश्किल था, चले गए। पर मेरा वजन जो यहां आनेपर ३६ सेर था, घटकर ३४ सेर रह गया। इससे मेरे घरवाले, जो सुबह-शाम मुझसे मिलने आते थे, बहुत घबराए। पर मेरेमें आई ताजगी और आशावादिताने उन्हें कुछ ढाढ़स बंधाया। और मेरे मनमें वजन घटनेसे कोई चिंता नहीं हुई। मैंने इस बीच यहां स्वास्थ्यार्थियोंके हितार्थ होनेवाले अभिभाषणोंसे

समझ लिया था कि चिकित्साके आरंभमें वजन जरूर घटता है पर धीरे-धीरे बढ़ने लगता है।

मैं एक ही सप्ताहके लिए यहां आया था, मैंने अपने लिए चिकित्साक्रम भी जान लिया था पर एक सप्ताह पूरा होनेपर यहांसे हटनेकी मेरी इच्छा नहीं हुई। मैंने सोचा यहांसे सब रोगोंको दूर करके ही चलना चाहिए। मैं चिकित्सालयमें सवा दो महीने रहा।

धीरे-धीरे वायु भी शांत होने लगी जो मुझे बेचैन किए रहती थी और मेरे पास बैठनेवालोंको परेशान। नींद पूरी आने लगी और मेरा सवेरे-शामका टहलना डेढ़ मीलसे बढ़कर चार-चार मील हो गया। क्रोध मेरा जाता रहा। और शरीरमें बलका भी संचार होने लगा। उस थोड़े वजनपर भी मैं अपनेमें बलका अनुभव करने लगा।

मैं घर चला आया और भोजन तथा टहलनेका क्रम चलता रहा। मेरा वजन धीरे-धीरे बढ़कर एक मन अठारह सेर हो गया। मैं सब दृष्टिसे स्वस्थ हो गया। काम करनेकी मेरी शक्ति बढ़ गई। जहां मैं लोगोंसे काममें पिछड़ा रहता था, वहां मैं अब दफ्तरमें अपने सब साथियोंसे पहले ही अपना काम समाप्त करने लगा।

आदमी समझता है कि वह बहुत ज्ञानवान है। वह नहीं जानता कि उसका ज्ञान कितना अल्प है। कई बार तो उसकी आंखोंके सामने होती चीजें भी उसे नहीं दिखाई देतीं।

—श्रीजीवानन्द श्रीवास्तव

(२)

कब्ज मुझे वर्षोंसे सता रहा था पर अंतमें मुझे उसपर विजय मिली, और मिली भी वह बहुत साधारण उपायसे।

मैंने इसे दूर करनेको कौनसे उपाय नहीं किए ? पर सब व्यर्थ गए और जब मैंने प्राकृतिक चिकित्साके साधन भी अपना लिए और काम न बना तब तो मैं बहुत घबराई।

पहले मैंने भोजन-सुधार किया। भोजनमें बहुत-सी कच्ची तरकारियोंको स्थान दिया और पकी तरकारियां काफी मात्रामें खाने लगी। भोजनमें फल भी जोड़े। कब्ज हटानेके लिए इतना काफी है पर इससे मेरा काम नहीं चला। पहले हफ्ते कुछ सुधार जरूर हुआ पर दूसरे हफ्ते यह लाभ धीरे-धीरे चला गया। तब मैंने अपनी रोटियोंमें अतिरिक्त चोकर डालना शुरू किया। चोकर मिलता कठिनाईसे। राशनिंगके जमानेमें सभी अपना चोकर खाते हैं। कौन चोकर निकालकर आटेकी मिकदार कम करता है। और अब लोग चोकरके लाभ भी जान गए हैं। पर मैं किसी तरह चोकर प्राप्त करती ही। कोई दस दिन चोकरसे मुझे बड़ा लाभ रहा पर फिर यह लाभ भी ठप हो गया। जब चोकर काम करने लगा था तब मेरी खुशीकी सीमा न थी, पर जब उसने भी धोखा दिया तो मुझे बड़ा दुःख हुआ। पर मैं निराश नहीं हुई। दवा मैं लेना नहीं चाहती थी। दवा कौन-सी लेती, सभी तो आजमा चुकी थी और एनिमा लेना भी मुझे बुरा लगता था। उसकी आदत पड़नेका तो मुझे डर नहीं था पर एनिमाकी खटखट मुझे पसंद नहीं थी। मुझे यही सोच रहता कि मेरे भोजनमें खुज्झा तो काफी जा रहा है। फिर मेरा कब्ज क्यों नहीं जाता।

मेरे पति भी मेरे प्रयोगोंमें दिलचस्पी रखते हैं। वे स्वयं फल-तरकारी जरूर काफी मात्रामें खाते हैं। पर शेष भोजनके संबंधमें विशेष ध्यान नहीं देते। वे रोज घंटेभर कसरत करते हैं और कहते हैं कि कसरत करते रहो तो फिर कोई खाना नुकसान

नहीं पहुंचा सकता। मैं उनके विचारोंसे कभी सहमत नहीं हो सकी पर जब उन्होंने कहा कि तुम्हारा कब्ज तुम्हारे अधिक खानेकी वजहसे है तो मैं चौंकी। बात कुछ ऐसी ही थी जब मैं खाकर उठती तो पेट भारी हो जाता पर मेरा इस ओर कभी ध्यान नहीं गया था कि कब्जका कारण अधिक खाना भी हो सकता है।

खैर, मैंने अपनी पाचनक्रियाको थोड़ा आराम देनेका निश्चय किया और पहला काम यह किया कि मैंने नाश्ता करना छोड़ दिया। इस प्रकार जो मैं शामको भोजन करती तो फिर जाकर दूसरे दिन दोपहरको ही मुंहमें कुछ डालती। दोपहर और शामके भोजनमें भी रोटीकी मात्रा कुछ कम की। दूसरे दिनसे ही पेट साफ होने लगा। अब सवेरे बिछावन छोड़ते ही शौचकी हाजत होती है और शौचके बाद पेट ठीक हल्का हो जाता है। शामको भी शौच जाती हूं और ठीक पेट साफ हो जाता है।

अब मुझे लगता है कि यदि मुझे पहले भोजनकी मात्रा-संबंधी थोड़ा भी ज्ञान होता तो मुझे वर्षों कब्जका कष्ट नहीं भोगना पड़ता। मेरा खयाल है कि बहुत-से लोगोंके कब्जका कारण भोजनाधिक्य है।

—श्रीमती तारा पाण्डेय

: २ :

अपच

पिछले आषाढ़की बात है, हमारी काशी शाखासे मनहरी नामक एक दस वर्षका पहाड़ी लड़का मेरे पास आया। वह तीन-चार महीनेसे अस्वस्थ था। जो कुछ खाता, पाखानेसे बिना पचे निकलता। मुंह पीला पड़ गया था। उसकी एक-एक हड्डी गिनी जा सकती थी। नाकसे हमेशा पानी बहा करता था, करुणाजनक दशा थी। नेपालसे आनेपर पंद्रह-बीस रोज बाद ही उसे मंदाग्नि हुई और आगे बढ़कर उसने संग्रहणीका रूप ले लिया। इधर-उधरकी दवाइयां होती रहीं, पर कोई नतीजा न निकला। सावन आते-आते बेचारेके पैरोंमें सूजन आ गई। लोगोंने कहा—बस, अब नहीं बचेगा और लोगोंके इस विश्वासका कुछ कम असर मनहरीके मनपर भी नहीं पड़ता। हमेशा वह मुंह लटकाए चिंतामग्न रहता। चिड़चिड़ा भी हो गया था। बरसातमें उसका नेपाल वापस जाना भी संभव नहीं था।

संयोग, इसी समय शिवपुरके श्रीमदनलालजी पोद्दारने आश्रमके नाम "आरोग्य" मासिक जारी करा दिया था। उससे मैं यह संस्कार पा रहा था कि औषधियोंके बिना केवल आहारकी शुद्धि और संयमसे सब रोग छूट सकते हैं। किसी अंकमें नीबूके बारेमें एक लेख पढ़ा था, जिसमें नीबूके गुण और उपयोगकी विधि बताई गई थी।

वैद्य न होते हुए भी साहस करके "आरोग्य" के लेखोंके

भरोसे मैंने उस बालककी चिकित्सा शुरू की। दो दिनका उपवास कराया और पानीमें नीबूका थोड़ा रस मिलाकर देने लगा। पहले तो लड़केने खट्टे नीबूका रस पीनेमें आनाकानी की, पर तनिक-सा नमक मिला देनेसे वह पीने लगा। मैंने उसके भोजनमें भी थोड़ा परिवर्तन करवाया। थोड़ा इसलिए कि आश्रम एक संस्था ठहरी अतः प्रत्येकके लिए अलग-अलग व्यवस्था करना बहुत मुश्किल क़ाम था। साथ-साथ लड़केको मैंने टहलने और फिर दौड़नेके आदेश दिए।

कुछ ही दिनों बाद, आहार संयम, नीबूका रस और प्रातः-भ्रमणके प्रभाव प्रत्यक्ष होने लगे। उसके चेहरेपर एक क्रांति-कारी परिवर्तन मालूम पड़ने लगा। धीरे-धीरे इन्हीं उपचारोंसे उसका स्वास्थ्य बिलकुल ठीक हो गया।

आज मेरे आश्रममें अपने समवयस्क बालकोंमें यदि सबसे अधिक स्वस्थ, सुडौल और गुलाबी मुखका कोई बालक है तो यही मनहरी है।

मनहरी मुझे अपना जीवनदाता कहता है और मैं प्रकृति-माताको उसकी जीवनदात्री कहता हूं।

—श्रीमुरलीधर पाण्डेय व्या० सा० धर्मशास्त्राचार्य

: ३ :

अग्निमंदता

होश संभालनेके बाद मैं हमेशा बीमार ही रहता आया। कोई महीना नहीं जाता जब मुझे कुछ हो न जाता और खाटका

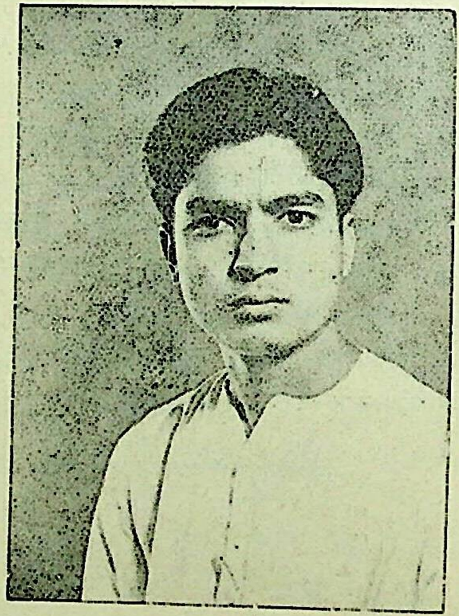

लेखक

सहारा न लेना पड़ता। कभी दस्त, कभी आंव, कभी ज्वर और कमजोरी तो मानो जन्मपत्रीमें लिखकर आई थी। नतीजा यह हुआ कि मेरी पढ़ाई-लिखाई कुछ न हो पाई। स्कूल कभी

नियमित रूपसे न जा पाया। सोलह सालका होनेपर मुझे कुछ समझ आई, मैं यह सोचने लगा कि रोगी रहकर दूसरोंपर भार होना पाप है, इसलिए इन रोगोंके आक्रमणोंसे पूरी तौरसे छूटनेके लिए मैंने अपनी चिकित्सा विधिवत् करानी आरंभ की। वैद्यजीकी शरण गया। इसलिए कि घरवालोंने मेरा प्रधान रोग कमजोरी माना और उनके ख्यालमें कमजोरीका इलाज वैद्यकमें बहुत अच्छा होता है। वैद्यजीने आसव अरिष्ट पिलाए, गोलियां दीं, च्यवनप्राश खिलाया। दवा सब स्वादिष्ट थीं पर लाभ कुछ न मिला। न भूख बढ़ी, न कमजोरी गई, न मेरा वजन ही बढ़ा।

अब डाक्टरोंकी बारी आई। मेरे पिताजी मुझे हैदराबादमें सर्वश्रेष्ठ समझे जानेवाले डाक्टरोंके पास ले गए। डाक्टर साहबने पीने-खानेकी दवा छोड़कर सिर्फ सूइयोंका कोर्स चलाया। पूरे छह महीने उनका पल्ला पकड़े रहा। अंतमें निराश होकर और अपनी हालत ज्यादा बिगाड़कर दूसरे डाक्टरके पास पहुंचा। इस प्रकार एकके बाद दूसरे डाक्टरका दरवाजा खटखटाते मेरे दो वर्ष निकल गए। इस अरसेमें मुझे दो-ढाई सौ इंजेक्शन लग गए। इंजेक्शन किसलिए दिए जाते हैं इसका विशेष पता तो मुझे नहीं लगता था पर कभी तो मुझे लीवरकी खराबी बताई गई, कभी विटामिन 'बी' की कमी, कभी शरीरमें कैलशियमका अभाव कहा गया। वैद्यजी तो कुछ पथ्य परहेज बताते थे पर डाक्टरोंने मुझे खुली छूट दे रखी थी। कह रखा था कि खूब खाओ और जो जी चाहे खाओ। दूधका ज्यादा इस्तेमाल करो। मेरे पिताजी मेरी मांके आगे डाक्टर साहबकी आज्ञा दुहराते और वे दूधका गिलास लिए मेरे सिरपर सवार रहतीं। सुबह उठते ही बादामका हलुआ बनातीं, वह खिलाकर

ऊपरसे दूध पिलातीं। रातको सोतेसे जगाकर रबड़ीका-सा गाढ़ा दूध गलेके नीचे उतार देतीं। मैं बार-बार इनकार करता, उन्हें बताता कि दूध पीनेकी मेरी इच्छा बिल्कुल नहीं है, पर मेरी कौन सुनता। इन सबका नतीजा यह हुआ कि मेरी हालत पहलेसे भी बुरी हो गई। हमेशा वायु होती रहती, पेट फूला रहता, पेटमें जब तब दर्द हो जाता, सिर भारी रहता, हाथ-पैरोंमें दर्द रहता। जरा भी धूपमें निकलनेपर चक्कर आने लगते और भूख तो प्रायः बंद हो गई। हालत और खराब ही हुई। मैंने निराश होकर दवा छोड़ दी और सोचा कि भगवान जो करेगा, देखा जायगा।

किसी काममें मेरा मन नहीं लगता था। समय काटनेको मैं एक स्थानीय पुस्तकालयमें घंटों बैठा रहता, उसका कुछ काम भी करता। वहां अेक सज्जन आया करते और बड़े मनोयोग-पूर्वक पत्र-पत्रिकाएं पढ़ा करते। उनका स्वभाव और स्वास्थ्य इतना अच्छा था कि मैं स्वभावतः ही उनकी ओर आकर्षित हो गया। धीरे-धीरे परिचय बढ़ा तो मैंने उनसे अपने स्वास्थ्यके बारेमें भी बातचीत की। उन्होंने मुझे प्रकृतिका सहारा लेनेको कहा और चिकित्साके लिए आरोग्यमंदिर, गोरखपुर जानेकी सलाह दी। उन्होंने मुझे भोजन, टहलनेके संबंधमें नियम भी वताए जो मुझे लाभकर प्रतीत हुए। इससे प्रभावित होकर मैंने गोरखपुर जानेका निश्चय किया। स्थानकी दूरीकी वजहसे मेरे घरवाले मेरा निश्चय सुनकर वहुत घबड़ाए पर मेरा आग्रह देखकर मुझे जानेकी इजाजत दे दी।

वहांके चिकित्सकने मेरे रोग और चिकित्साके इतिहासको बड़े ध्यानसे सुना और मेरे रोगको अग्निमंदता और वायु-विकार बताया और इसके लिए उन्होंने मुझे मट्ठेका कल्प कराया।

तीन दिनतक पहले मुझे उपवास कराया गया और रोज एनिमा दिया गया। केवल इस प्रयोगसे मेरी भूख जागी और खानेकी कुछ रुचि हुई। अब मट्ठा शुरू हुआ। सुबह सात बजेसे शामके सात बजेतक मैं मट्ठा पीता। पहले मात्रा थोड़ी थी पर धीरे-धीरे मात्रा बढ़कर एक बारमें डेढ़ पाव हो गई। मट्ठेका प्रभाव यह हुआ कि मेरी भूख खूब बढ़ी और मुझे अच्छी नींद आने लगी। एक महीने मट्ठा पीनेके बाद धीरे-धीरे साधारण भोजनपर आ गया। अब मुझे व्यायाम भी कराया जाने लगा और आसन सिखाए गए। टहलता तो मैं शुरूसे ही था।

मट्ठा-कल्पके बाद भी मैं वहां डेढ़ महीने ठहरा। स्वास्थ्य-नियमोंका अच्छी तरह अभ्यास किया। मेरी शिकायतें, कल्पमें ही चली गईं थीं, शक्ति भी आई थी पर आसन और कसरतोंने मेरे शरीरको पुष्ट बना दिया। प्रसन्नता और स्फूर्तिसे मेरा मेल हो गया। मैं खुश होकर घर आया। किसीको यह आशा नहीं थी कि मैं भी कभी स्वस्थ हो सकता हूं और मेरे दुबले शरीरमें परिवर्तन हो सकता है। सभी मुझे देखकर आश्चर्य-चकित रह गये।

चिकित्सा कराए मुझे दो वर्षसे अधिक हो चुके हैं, मैं फिर कभी बीमार न पड़ा; क्योंकि मैंने वहां समझ लिया था कि बीमार पड़ना और न पड़ना तो आदमीके अपने हाथमें है।

मेरा वजन इस समय एक मन सोलह सेर है। पहले यह एक मन छह सेरसे कभी अधिक न हुआ था। यह सब प्रकृति माँकी कृपाका प्रसाद है जिसका संदेश घर-घर पहुंचाने और उसके गुण गानेकी मुझे धुन लग गई है।

—पूरनमल अग्रवाल

: ४ :

स्वप्नदोष

मेरे स्वस्थ होनेकी कहानीमें कोई विशेष विचित्रता नहीं है। रोगी होनेकी कहानी तो और भी साधारण है। साधारण

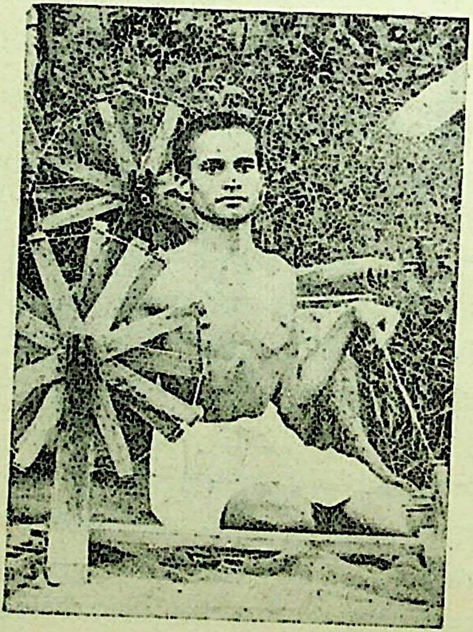

लेखक : चिकित्साके पहले

इस मानेमें कि मैं भी उन्हीं कारणोंसे बीमार पड़ा जिनसे अक्सर युवक बीमार रहते हैं।

यों बचपनमें भी मेरा शरीर बहुत हृष्ट-पुष्ट नहीं था, साधारणतया स्वस्थ था।

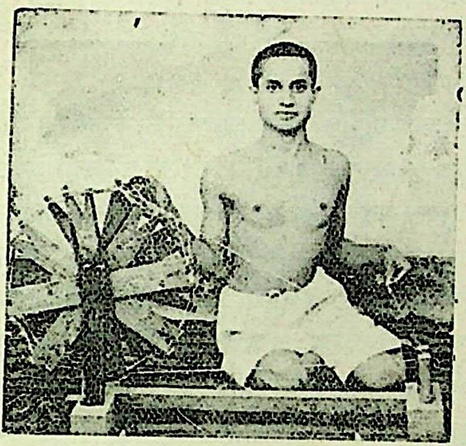

लेखक : स्वस्थ होनेपर

पांच वर्षकी उम्रमें ही मैं स्कूल भेज दिया गया था। जहांतक मुझे याद है मैं साधारण लड़कोंसे अधिक बुद्धिमान समझा जाता था। पर बुद्धिमान होनेका कोई फल न निकला। चौदह वर्षका होते-होते मैंने हस्तमैथुनकी कुटेव सीख ली, जो सवा साल चली। पुस्तकों एवं मासिक पत्रोंके लेखोंसे मुझे इसकी बुराइयां ज्ञात हुईं और मैंने इसपर विजय पा ली। मेरी खुशीका वारापार नहीं था। लगता था जैसे मैंने अपनेको कैदसे छुड़ा लिया हो। पर मेरी यह खुशी बहुत दिनोंतक नहीं चली। मुझे शीघ्र ही स्वप्नदोष होने लगा। महीनेमें पांच-छह बारतक हो जाता। मैं पत्र-पत्रिकाएं तो पढ़ता ही था, उनके विज्ञापन पढ़कर इसके लिए दवाएं मंगानी शुरू कर दीं

पर शोक कि जो मनमोहक विज्ञापन मेरा रोग दूर करनेके लिए बड़े-बड़े वादे करते थे, उनकी दवाइयां कुछ भी लाभ न कर सकीं। इन दवाओंके प्रयोगमें ही पांच वर्ष बीत गए। मेरा पाचन बिगड़ गया और मानसिक चिंता अधिक सताने लगी, स्मरण-शक्ति कमजोर हो गई।

एक मित्रके कहनेपर मैं व्यायामशालामें कसरत करने जाने लगा, उसका कुछ लाभ मिला। पर इन्हीं दिनों मुझे होटलमें खानेकी आदत पड़ गई। अतः बढ़ता हुआ लाभ रुक गया।

इसी बीच सन् '४२ का आंदोलन शुरू हो गया। मैं भी उसमें शामिल हुआ। जिसमें मुझे कई महीनोंतक छिपकर काम करना पड़ा। इस अवस्थामें कई-कई दिन खाना नहीं मिलता था पर जब मिलता तो मैं डटकर खा लेता। इसका नतीजा बुरा हुआ। पाचन बुरी तरह खराब हो गया। पकड़े जानेपर कई मास हवालातमें रखा गया। हवालात नर्कसे भी बुरी थी। वहां रही-सही तंदुरुस्ती चली गई।

सजा होनेपर एक सालतक मैं एक-एक करके चार जेलोंमें रहा। अजीर्ण वहां भी जारी रहा। अंतिम जेलमें कुछ सुधार हुआ पर बहुत नहीं। छूटनेपर सेवाग्राम चला गया, जहां चरखा चलानेकी शिक्षा लेने लगा। यहां मेरे ज्यादा खानेकी आदतमें फिर उभार हुआ एवं मलेरिया ज्वर आने लगा। फलतः मेरी पाचनशक्ति बहुत बिगड़ गई। कमजोरी आ गई और जब मैं एक आसनसे बैठकर आठ-आठ घंटे कातने लगा तो कब्ज बढ़ गया और धीरे-धीरे बहुत-सी शिकायतें पैदा हो गईं।

मैं सेवाग्राम छोड़कर हरिजन-विद्यालय, दोहरीघाट (आजमगढ़) आ गया। वहां स्वास्थ्य बहुत नहीं सुधरा। निराशा घेरे रहती, शरीर पीला कमजोर हो गया था, पेट

भारी लगता एवं उसमें वायु भरी रहती, स्मरण-शक्ति जैसे नष्ट हो गई थी। मुंहपर जरा भी तेज नहीं था। स्वप्नदोष तो था ही। वजन घटता जा रहा था। हरिजन-गुरुकुलके संस्थापक स्वामी सत्यानंदजीने मुझे प्राकृतिक चिकित्सा करानेकी सलाह दी और आरोग्य मंदिर, गोरखपुर भेज दिया।

वहां प्राकृतिक चिकित्साके मुझे बहुत साधारण प्रयोग कराए गए। टहलना, भोजन-सुधार, कुछ ठंडे पानीके स्नान, ताकत बढ़नेपर मुझे कुछ योगासन सिखाए गए। करीब एक महीनेमें मेरी पूर्व-स्थितिमें अंतर पड़ा। मैं स्वस्थ होने लगा। तीन महीनेमें बिल्कुल ठीक हो गया। मेरी सारी शिकायतें चली गईं। भूख खूब लगने लगी, कब्ज चला गया और फिर तो रोगके सारे लक्षणोंने धीरे-धीरे साथ छोड़ दिया। इन तीन महीनोंमें मुझे दूध-घी नहीं दिया गया। पर मेरा वजन चौदह पौंड बढ़ा। प्राकृतिक चिकित्साके सीखे नियमोंपर चलकर मैंने अपनी तंदुरुस्ती धीरे-धीरे और भी बना ली है। कइयोंको स्वस्थ होनेमें सहायता दी है। वजन कई पौंड और बढ़ गया है, शरीरमें खूब ताकत प्रतीत होती है, त्वचापर लाली छा गई है। अपनेको मैं हर कार्यके योग्य पाता हूं, मैं स्वस्थ रहनेकी कला सीख गया हूं। मुझे बीमार पड़नेका अब कोई डर नहीं है।

—श्रीनारायण भट्ट

: ५ :

खुजली

लेखिका : चिकित्साके पूर्व
हाथपर खुजलीके घाव देखें

कभी-कभी हम जिन चीजोंको देखकर हंसते हैं वही करनेको हमें मजबूर होना पड़ जाता है। मैं उन्हींमेंसे एक हूं। प्राकृतिक चिकित्साको—मिट्टी, पानी, धूपके उपयोगको—मैं जंगलीपन समझती थी। एक दिन ऐसा आया कि मुझे

उनका उपयोग करना पड़ा, और यह कहते हुए आज मुझे शरम नहीं बल्कि बड़ी खुशी होती है कि अब तो मैं इनकी भक्त बन गई हूं। मेरे आड़े दिनों ये काम आए, जब कोई मेरा रोग नहीं मिटा सका तो मैं इनकी सहायतासे चंगी हुई।

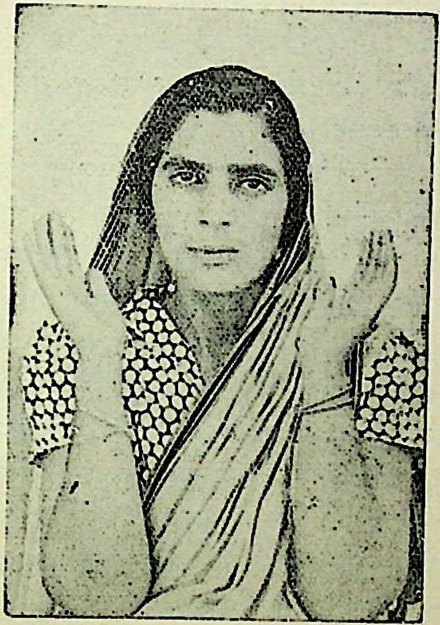

लेखिका : चिकित्साके बाद

मैं भक्त कैसे बनी ?

मुझे बड़े जोरसे खुजली हो गई थी। हाथोंमें और सारे बदनमें खुजलीके दाने निकल आए थे, जो मवादसे भरे रहते। एक फूटता तो तीन नए निकल आते। सारे बदनमें इस कदर छा गए थे कि लेटना मुश्किल था। दिन तो किसी तरह बातों

और दिलबहलावके साधनोंसे कट जाता पर रात कटनी पहाड़की ऊंची चढ़ाईकी तरह कठिन हो जाती। हाथको उठाए-उठाए मैं 'कंहरती' रहती। साथ ही चिंता बढ़ती कि जब डाक्टर, वैद्य, हकीम मुझे कोई लाभ न पहुंचा सके तो हे ईसामसीह, अब इस रोगसे मेरा छुटकारा किस प्रकार होगा। सवेरे जब घावोंकी पट्टियां खोलती तो यह देखकर कि दाने बढ़ते ही जा रहे हैं, मैं रोने लगती। मेरा रोना देखकर मेरे पति व्याकुल हो जाते, पर वे धैर्यसे काम लेते और मुझे भी धीरज बंधाते। उनकी सांत्वनासे थोड़ी देरके लिए मैं चुप हो जाती। वे मेरे फफोलोंको फोड़ देते, मवादको पोंछते और घावोंको धो डालते। इन घावोंको देखकर तो मुझे अपनेपर घृणा-सी होने लगी थी।

मेरे पति फर्नीचरकी दुकान चलाते हैं। वे इन्हीं दिनों एक जगह लकड़ी खरींदने गए जो आरोग्य मंदिरके पास है। वे मेरे संबंधमें वहांके प्राकृतिक चिकित्सकसे भी मिले। उन्हें यह जानकर बेहद खुशी हुई कि प्राकृतिक चिकित्साद्वारा खुजली जा सकती है और साथ ही यह जानकर भी कि, जैसा कि हम लोगोंका खयाल था कि प्राकृतिक चिकित्सामें अंगूर, अनार, सेब खानेकी जरूरत नहीं पड़ती, बल्कि स्थानीय फल-तरकारियां ज्यादा अच्छा काम करती हैं।

खैर, मैं बड़ी मुश्किलसे राजी हुई और अपनी चिकित्सा कराने अपनी छोटी बहनके साथ वहां गई। मेरी छोटी बहनको भी मेरी सेवा करते-करते खुजली हो गई थी।

यहां हमारा पुराना भोजन बंद कर दिया गया। उसके बदले पालक, मूली पत्तोंसहित, प्याज, टमाटर, गाजर, अमरूद, पपीता खानेको दिया जाने लगा। सवेरेसे दोपहरतक मैं केवल पानी पीकर रहती। दोपहरको कच्ची सब्जियां खाती और

शामको फल। यह खाना बहुत अखरता था। सवेरेसे दोपहर-तकका समय तो बड़ी मुश्किलसे कटता। मैं सवेरे चाय-रोटी खानेकी आदी थी, इस भारी भोजनके बिना पेट खाली-खाली लगता और उस खानेकी याद तो आती ही रहती। शामको हमें एनिमा दिया जाता। मैं तो किसी तरह एनिमा ले भी लेती थी पर मेरी छोटी बहनको यह बहुत बुरा लगता। वह नर्ससे एनिमा न देनेके लिए विनती करती, पर नर्स बहुत अनुभवी और होशियार थी, वह मेरी बहनको समझा-बुझाकर एनिमा दे ही देती।

शीघ्र ही इस क्रमसे मुझे अपना बदन कुछ हलका मालूम होने लगा। सुस्ती दूर होकर स्फूर्तिकी प्रतीति होने लगी और घावोंके दर्द और तनावमें भी कमी हुई। अब हमें भाप-नहान दिया गया, जिससे विशेष लाभ हुआ और फुंसियां मुर्झाने और धीरे-धीरे सूखने लगीं। इस क्रमसे मेरी बहन दस दिनमें और मैं कुल दो सप्ताहमें चंगी हो गई। हां, घावके निशान अब भी बाकी थे जिनको देखकर लगता था जैसे मेरे सारे बदनको किसीने क्षत-विक्षत किया था।

आरोग्य मंदिरमें समय-समयपर होनेवाले लेक्चरोंसे मैंने जाना कि मांस अच्छी चीज नहीं है, चीनीके वदले गुड़ खाना अच्छा है, और आटेसे चोकरको नहीं निकालना चाहिए, क्योंकि वह कब्ज दूर करता है। मैं मांस बहुत खाती थी, समझती थी कि इससे बल मिलता है। पर जब मैं मांस खाती थी तो मेरी हालत यह थी कि कुछ दूर चलनेपर ही मैं हांफने लगती थी और लौटनेपर चारपाईपर लेटकर मुझे आराम करना पड़ता था। अब जब मैंने इसका उपयोग छोड़ दिया है तो मेरी वह कमजोरी चली गई है। कितना ही मैं चल लूं मुझे किसी तरहकी

कमजोरी नहीं मालूम होती और रोटी-तरकारी और फलोंका यह भोजन मुझे अब अधिक स्वादिष्ट लगने लगा है। एक बात कहना भूल रही हूं। मुझे ववासीरका मर्ज भी था, वह भी खुजलीके इलाजमें ही चला गया, उसकी तो मैंने चिकित्सकसे चर्चा भी नहीं की थी।

मैं सोचती हूं कि ये ओषधियां, जो बड़े-बड़े कारखानोंसे बनकर आती हैं या वैद्योंके घरमें बनती हैं, क्या बिल्कुल बेकार नहीं हैं? इन बड़े-बड़े डाक्टर, वैद्यों, हकीमों, उनकी दवाओंको रहते हुए भी ये रोग क्यों फैल रहे हैं? इनकी संख्या क्यों बढ़ रही है? मुझे लगता है, यह सब धोखा है। पैसा कमानेका एक नीच तरीका है। प्राकृतिक चिकित्सा तो वह जीवन सिखाती है जिसपर चलनेपर आदमी कभी बीमार नहीं पड़ सकता। यह जीवन अनुभव करनेकी चीज है और इससे मिला अनुभव कोई छीन नहीं सकता और फिर न कोई हमें भुलावा ही दे सकता है।

खुजलीसे मुक्ति पाए मुझे सात वर्ष हो गए। तबसे मैं और मेरा परिवार रोगसे मुक्त है। अगर कोई कभी बीमार भी पड़ता है तो मिट्टी, पानी, धूप, आकाश और हवाके, जिनसे हमारे शरीरकी रचना हुई है, प्रयोगसे शीघ्र अच्छा हो जाता है। प्राकृतिक चिकित्साने मेरे परिवारमें सुख और शांति बख्शी है इसके लिए मैं इस चिकित्साको चलानेवालों और इसका प्रचार करनेवालोंकी कृतज्ञ हूं।

इसके बाद तो मेरे घर जब कभी कोई बीमार पड़ा मैंने इसी उपचारका आश्रय लेकर लाभ उठाया। उन सबका इलाज़ मैं खुद कर सकी।

—श्रीमती रिबकादत्त

: ६ :

खांसी, रक्ताल्पता (अनीमिया) और संग्रहणी

टाइफाइड (मियादीबुखार) पूरा जा भी नहीं पाया था कि इसकी वजहसे महीनेभरके भीतर-ही-भीतर मुझे तीन

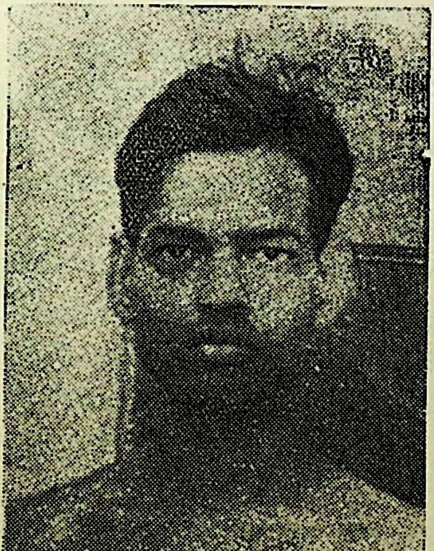

लेखक

रोगोंने आ घेरा। कमजोरी इतनी बढ़ी कि दस कदम चलना दूभर हो गया। पेटकी खराबी तो महीनों नहीं सालोंसे थी, पर खांसी तो हाल हीमें मेरी साथिन हुई थी। मेरी दशा देखकर

परिवारवालोंकी परेशानी बढ़ी। डाक्टरको छोड़ वैद्यजीकी दवा शुरू हुई पर हुई वह बेकार साबित। शरीरमें रक्त घटने लगा। कभी-कभी वैद्यजी डरा देते कि बराबर खांसीका बने रहना अच्छा चिह्न नहीं है। उनका कथन मुझे अधमरा कर देता। सोचता कि क्या मरना ही होगा? वैद्यको विदा करके फिर डाक्टरको याद किया। कैलशियम और विटामिनोंकी गोलियां चलीं और सूइयाँ चुभाई जाने लगीं। पहली सूईके बाद ही कड़ा बुखार आया और बांहमें जोरका दर्द। उसी समय डाक्टरी दवा और इंजेक्शन तो बंद हो गए। पर कुछ-न-कुछ तो करना ही चाहिए। मेरे मुरब्बियोंकी राय जलवायु-परिवर्तनके लिए हरिद्वार या नैनीताल जानेकी हुई। मैंने सोचा रोग न जाय तबतक जल वायु-परिवर्तनके लिए जानेसे क्या फायदा होगा।

इसी समय मेरे मनमें प्राकृतिक चिकित्साको अजमानेका खयाल उठा। मेरे स्थानसे आरोग्य मंदिर सिर्फ एक मील है। एक दिन साइकिल रिक्शेपर जाकर चिकित्सकको अपनी कहानी सुनाई। उनसे आराम होनेकी पूरी आशा और आश्वासन पाकर २१ मई १९४७ को मैं वहां दाखिल हुआ पर पहले दिन जो खाना मिला वह बड़ी मुश्किलसे गलेके नीचे उतरा। उसमें न घी था न कोई मिर्च-मसाला। बिल्कुल सादी रोटी और थोड़ा सलाद। संतोष यही था कि मेरे साथ बैठे बहुतसे रोगी और चिकित्सक महोदय भी करीब-करीब यही खाना खा रहे थे और कहना चाहिए कि मजेके साथ खा रहे थे। मुझे पहले कभी ऐसा खाना खानेकी आदत नहीं थी लेकिन हफ्तेभरकी आदतसे ही इसी खानेमें मुझे भी पूरा मजा आने लगा। चटपटी चीजों—खटाई-मिठाई—से मन उतरने लगा। एक

दिन मेरे घर एक मंदिरकी मूर्तिकी प्राण-प्रतिष्ठाके सिलसिलेमें कई तरहके पकवान बने थे। मुझसे घरवालोंने प्रसादरूपमें थोड़ा-सा पकवान पा लेनेका बहुत आग्रह किया। पर मैंने भगवान्‌के प्रसादस्वरूप कुछ फलमात्र ही लिए।

चिकित्सा-क्रम

पहले दिन ठंडे पानीका ५ मिनटका कटिस्नान (हिपबाथ) लेकर यथाशक्ति टहलना बताया गया। मैं बड़ी हिम्मत करके १५ मिनट चला होऊंगा कि मेरा दिल घबराने लगा। पर धीरे-धीरे कुछ दिनोंमें बिना किसी थकानके मैं ४-५ मीलतक घूमने लगा। कटि-स्नान भी ५ से १५ मिनटतकका हो गया। धीरे-धीरे कुछ योगासन करने लगा। मालिश, भाप-नहान और ठंडे गरम पानीके कई तरहके स्नान भी चलने लगे।

यह आमका मौसम था और मैं आमका बेहद शौकीन। मैंने अपनी खूराकमें चिकित्सक महोदयसे आम शामिल करनेकी मांग की। उन्होंने १५ दिन बाद आम और दूधका कल्प करानेकी मंशा जताई। पर १४ वें दिन डाक्टरने मेरी रुचिकी कुछ परवाह किए बिना यकायक मुझे मठेके कल्पका हुक्म सुना दिया। चिकित्सकने कहा, जब दस्त फूला आ रहा है तो अभी आमका समय नहीं आया। कोठेके कुछ ढंग संग्रहणीके हैं। जबतक यह फसाद दूर न हो तबतक सिर्फ मठा लो। जी तो बहुत छटपटाया पर करता क्या? दूसरे, इतने दिनोंमें खाने-पीनेकी कुछ बातें समझ भी गया था, इसलिए चिकित्सककी सलाहका सत्य मैं समझ रहा था। सवा सेर दूधके मठेसे शुरू करके २१ रोजमें ४॥ सेरतक पहुंचा। एक पाव दही तो दो छटांक पानीके साथ सिर्फ मथ लिया जाता, मक्खन नहीं निका-

लते। प्रति डेढ़ घंटेपर एक खूराक लेता था। खांसी तो बारह दिनमें ही चली गई थी खूनकी कमी एक महीनेमें गई और संग्रहणीको भी साथ लेती गई। शरीरका दुबलापन बाकी रहा। पर उसकी मुझे बहुत परवा नहीं थी। क्योंकि पतले शरीरके भीतर एक नई स्फूर्ति और एक प्रकारका ओज जान पड़ रहा था।

बीचके विघ्न

मेरा मठा-कल्प चालीस दिनके लिए था। लेकिन २१वें दिन घर जाकर मैंने थोड़ेसे जामुन खा लिए। मुझे पता नहीं था कि मठे और जामुनकी दोस्ती नहीं है। मठेके अलावा मेरे लिए कुछ भी मुंहमें डालनेकी मनाही थी। पर इस जीभ-निगोड़ीने मुझे स्वादके लालचमें फंसाया। बहुतोंको यह जीभका स्वाद मारता है, मुझे भी इसने बड़ा दुःख दिया। लगभग घंटेभर बाद पेटमें जोरकी गड़गड़ाहट हुई और दर्द शुरू हुआ। मैं बहुत बेचैन हो गया। कै की इच्छा हो, पर कै हो नहीं, यही हालत दस्तकी भी थी। मेरी टेबुलपर एक कागजी नीबू रखा था, मैंने उसे चूसा। उसके बाद सेरों कै हुई। काफी पित्त गिरा। मैंने चिकित्सकको सूचना दी, मैं बड़ी घबराहटमें था। उनसे खूब सांत्वना मिली। मुझे १०३ डिग्री ज्वर हो आया था। पेटपर मिट्टीकी पट्टी दी गई, पीनेको ठंडा पानी। इससे मुझे काफी शांति मिली। ३-४ दस्त हुए, पेटकी पूरी सफाई हो गई। ये सारे उपद्रव शामको पांच वजेके करीब शुरू हुए थे और रातको ९ बजते-बजते मैं सबसे छुटकारा पा गया। बुखार कब गया यह तो देखा भी नहीं गया। मेरे लिए दो दिनके उपवासका हुक्म निकला। माना मैंने, क्योंकि

भूल मेरी थी, दंड दूसरा कौन भोगता? इसके बाद फिर मठा चालू हुआ। ३-४ दिनतक दोपहरतक मठा, शामको थोड़ा भात और उबाला हुआ केला मिलता। इससे स्वास्थ्य ठीक होता गया। फिर आम खानेकी भी इजाजत मिली। तबसे मेरी हालत बराबर सुधरती गई। मैंने तीन महीने नमक और चीनीका परहेज किया। अब भी भोजन बिल्कुल सादा, बिना मिर्च-मसालोंका करता हूं। मैं इस समय अपनेको बीमारीसे पहलेकी अपेक्षा स्वस्थ समझ रहा हूं। मैं प्राकृतिक चिकित्साका अत्यंत कृतज्ञ हूं। स्वास्थ्यके संबंधमें मुझे एक नई दृष्टि मिल गई जो मेरे लिए सबसे बड़ा लाभ है।

—श्रीसत्यनारायण झुंझनूवाला

: ७ :

उकवत

मैं पूरे चार साल बीमार रहा। जब बीमारी शुरू हुई उस समय मेरी उम्र बारह सालकी थी, आज मैं सोलहका हूं।

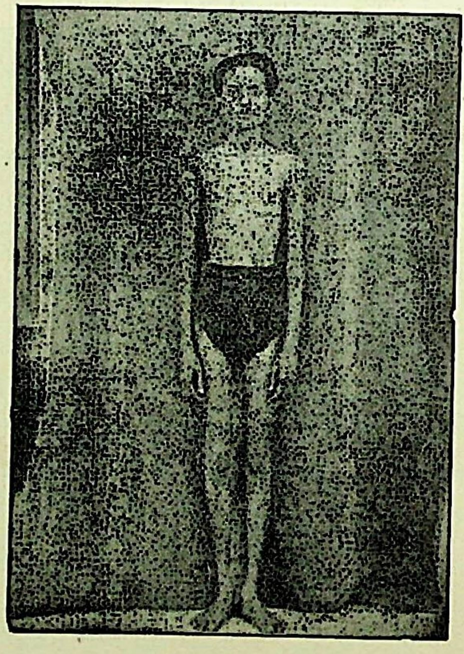

लेखक : चिकित्साके पहले

चार महीने पहले मैं बारह वर्षका बच्चा लगता था, आज मैं सोलह वर्षका युवक हूं, यह प्राकृतिक चिकित्साकी कृपा

है। बच्चा इसलिए लगता था कि मेरा शरीर कभी बढ़ा ही नहीं। जब रोग पीछा न छोड़े तो शरीर कहांसे बढ़े।

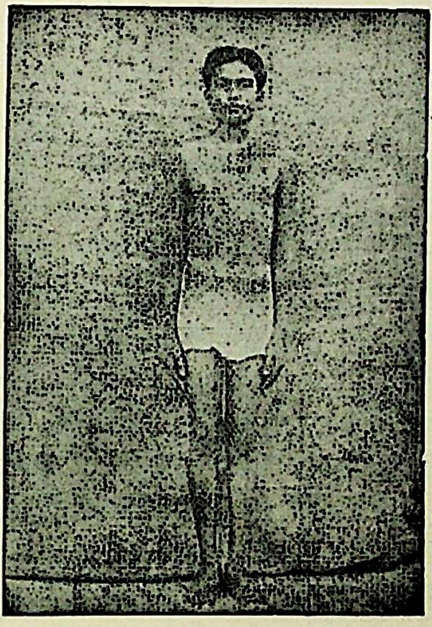

लेखक : स्वस्थ होनेपर

चार वर्ष पहले मुझे मलेरिया हुआ, जो हर दूसरे दिन आता। यह सिलसिला लगभग दस माह चला। इसके लिए मैं कुनैन खाता, डाक्टर वर्मनका 'जूड़ीताप' पीता तथा और भी कई दवाएं पीईं, इतनी कि घरमें शीशियोंका ढेर लग गया। नतीजा हुआ यह कि ज्वर तो नहीं गया, मेरी श्रवणशक्ति चली गई, मैं ऊंचा सुनने लगा। शरीर काला हो गया, भूख चली गई और लोग पूछने लगे कि तुम्हें दिक तो नहीं हो गया है?

पाठक स्वयं सोचें आपकी ऐसी हालत हो और यह प्रश्न आपसे कोई करे तो आपपर क्या बीतेगी ? लोगोंकी सूरतसे मुझे घृणा हो गई। तबियत चाहती किसीका मुंह न देखूं।

मैं रहता था नैपालकी तराईमें। घरवालोंकी सलाहसे मैंने वह स्थान छोड़ दिया। इसके फलस्वरूप ही, या संयोग कहिये कि बिना किसी दवाके मेरा ज्वर तो चला गया पर मैं पनप न पाया। ज्यों-त्यों सालभर घसीटता रहा, इसी बीच सारे शरीरपर खाज हो गई। अब खाजकी दवा होने लगी, पर खाज दबी नहीं। इस खाजके लिए क्या-क्या नहीं किया, कितनी दवाएं लगाईं, कितने मरहम। आज तो उनके नाम भी याद नहीं हैं। अंतमें एक वैद्यकी दवा, काढ़े और लेपसे खाज तो रुकी, पर एक पैरमें भयंकर उकवत (एक्जिमा) हो गया। पूरे पैरकी त्वचा हाथी-चाम हो गई, मोटी, खुरदरी, काली। जब मेरी नजर पैरपर जाती मुझे एक धक्का-सा लगता। मैं कोशिश करता कि पैरपर नजर ही न पड़े। इससे मुक्ति पानेकी कोशिश जारी रही। पर कोशिश क्या चलती जब दवा देनेवाले ही कहते कि यह रोग अच्छा नहीं होता। उनके इस कहनेसे मैंने उकवतकी दवा तो बंद कर दी, पर संयोगसे उकवतपर एक प्राकृतिक चिकित्सकका लिखा लेख मुझे एक साप्ताहिक पत्रमें पढ़नेको मिल गया। उसके बताए अनुसार मैं दिनमें कई वार नहाता। गर्मीके दिन थे नहाना अच्छा भी लगता, इससे उकवतकी भयंकरता तो मिटी पर चमड़ेकी मोटाई और कालेपनमें कोई अंतर नहीं पड़ा।

इस तरह मैं घिसट रहा था कि एकाएक मेरी भूख बंद हो गई। कमजोरी थी ही। वह और बढ़ने लगी। पेटमें धीमा-

धीमा दर्द रहता। कोई चीज खाता तो वह पचती नहीं। मुंहका स्वाद फीका रहता। किसी चीजके खानेकी इच्छा नहीं होती। आंख पीली हल्दी-सी हो गई। बैठे-बैठे ही मैं सूखने लगा। इसके लिए महीनों डाक्टरोंकी दवा की, पर सब बेकार। एक वैद्यजीके पास गया, उन्होंने मुझे सूइयां लगाईं, आसव-अरिष्ट पिलाए। जिससे इतना फर्क पड़ा कि अब मैं जो खाता फौरन उसी रूपमें कै हो जाता। मैं जीवनसे निराश हो गया। मैंने समझ लिया कि अब मेरा बचना कठिन है। सारे शरीरपर रक्खा हुआ एक सिरभर दिखाई देता जो अजीब बड़ा और बेडौल-सा लगता था। मेरे मरनेमें अब देर नहीं है, इसमें अब किसीको कोई संदेह नहीं रहा।

इसी बीच मेरे जीजा श्रीरामप्रसादजी, जो गोरखपुरके आरोग्यमंदिरमें सहकारीका काम करते हैं, मेरे यहां आए। उन्होंने मेरी हालत देखी-सुनी और मेरे घरवालोंको समझाकर मुझे अपने साथ प्राकृतिक चिकित्साके लिए ले गए।

वहां मेरे स्वास्थ्यकी परीक्षा होनेके बाद इलाज शुरू हुआ। सवेरे-शाम पेडूपर मिट्टीकी पट्टी, और खूराककी शक्लमें थोड़ा-थोड़ा टमाटर, लौकी और पालकका रस दिया जाने लगा। यह मुझे पचा। अब जहां मैं दिन-रात चारपाईपर पड़ा रहता था वहाँ मैं एक-दो फर्लांग टहलने लगा। मुझे लगा, अब मैं जरूर अच्छा हो जाऊंगा। चिकित्सासे अधिक मुझपर वहांके आशाप्रद वातावरणका प्रभाव पड़ा। वहां एक-से-एक पुराने रोगी थे, मुझसे भी गए बीते। हजारों रुपए खर्च करके, चिकित्सा करानेके बाद, निराश होकर यहां आए थे। 'जब इन्हें लाभ हो रहा है तो मुझे क्यों नहीं होगा' ऐसा मैंने सोचा। सबसे बातें करनेमें, सबकी चिकित्सा देखनेमें मन भी लगता। कुछ-

कुछ मनमें यह बात भी आई कि यह चिकित्सा तो बड़ी आसान है। इसे जान-सीखकर मैं अपने गांववालोंको भी दवा और रोगोंके जालसे मुक्त करूंगा।

जरा शक्ति बढ़नेपर मुझे थोड़ा मट्ठा मिला और चिकित्सा भी कई प्रकारकी चलने लगी। मैं सवेरे-शाम जस्टका प्राकृतिक नहान दो-दो मिनट करता, मालिश मिलती। कभी गरम ठंडे पानीके टबोंमें बैठता तो कभी धूपस्नान दिया जाता। उकवत-की जगहपर गीली पट्टी लपेटनेके बाद ऊनी पट्टी लपेटी जाती। दो सप्ताहके अंदर मैं रोज एक मीलतक टहलने लगा। अब मुझे भोजनमें सवेरे पालकका पावभर रस और दोपहर और शामको रोटी-सब्जी दी जाने लगी। दो सप्ताहकी चिकित्साके बाद मेरी आंखोंका पीलापन कम होने लगा और पैरके उकवतको ध्यानसे देखनेसे लगता कि वह भी कम हो रहा है।

डेढ़ महीनेमें मेरा जो वजन केवल ७० पौंड था ७७ पौंड हो गया। भूख मुझे कसकर लगने लगी और मेरा भोजन करीब-करीब उतना ही हो गया जितना मैं स्वस्थ दशामें खाता था। शरीरमें शक्तिका संचार हो गया था। लगता था कि बिजली भर गई है, एक मिनट बैठा नहीं जाता था। कुछ-न-कुछ किया ही करता। यदि अपना काम न होता तो दूसरेका ही काम करता। सवेरे-शाम चार-चार मील टहलता। नींद ऐसी गाढ़ी आती कि बच्चोंकी तरह सोता। एक करवटमें ही सवेरा हो जाता। कानोंसे ठीक सुनाई देने लगा।

हालत इतनी सुधर जानेपर मैं घर चला आया और अपने काम-काजमें लग गया। घरपर मैंने चिकित्साकेनाम सिर्फ शाम-सवेरे टहलना और प्राकृतिक चिकित्सालयका भोजन जारी रखा। मुझे यह इतना स्वादिष्ट लगता है कि मैं इसके

सिवा किसी दूसरे भोजनकी सोच ही नहीं सकता। इसे बदलूं कैसे ? इससे सस्ता भोजन मिलना भी तो कठिन है और जब कि इसी भोजनसे मेरा वजन १०२ पौंड हो गया है। मैं हर तरहसे अपनेको नीरोग पाता हूं। रोगके बाहरी निशान आंखोंका पीलापन और उकवत तो डेढ़ महीनेमें ही मुझसे बिदाई ले गए।

पहलेकी बात सोचता हूं तो लगता है कि मैं एक भयानक सपना देखकर उठा हूं। कहां वह मेरा कंकाल शरीर, कहां यह स्फूर्तिसे भरी थकानको न माननेवाली यह मांसल देह जो हमेशा कामकी खोज करती है। कहां वह गिरा हुआ रोग और मृत्युके भयसे आक्रांत मन, कहां यह दीर्घजीवन और स्वास्थ्यके आनंदसे आप्लावित हृदय। मैं कुछ दूसरा ही हो गया हूं। यह सब प्रकृतिमाताका प्रसाद है। बार-बार उसके चरणोंमें मेरा मस्तक झुक जाता है।

—श्रीदयाराम गुप्त

: ८ :

दमा और गठिया

पहले मुझे गठिया और दमा था। अब मैं चंगा हूं। रोगकी

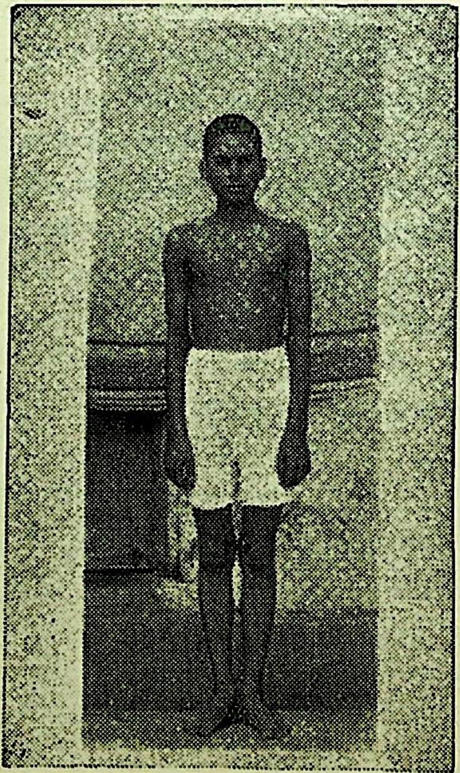

लेखक : चिकित्साके पहले

अवस्थामें मेरा वजन ७४ पौंड था, स्वस्थ होनेपर ९४ पौंड।

मैं रोगसे तो मुक्त हुआ ही और अनेक कुटेवोंसे भी । पंद्रह वर्षकी मेरी उमर, इसी अवस्थामें अनेक दुर्व्यसनोंका शिकार हो, गया था। बीड़ी-सिगरेट धकाधक पीता, चाय सवेरे-शाम

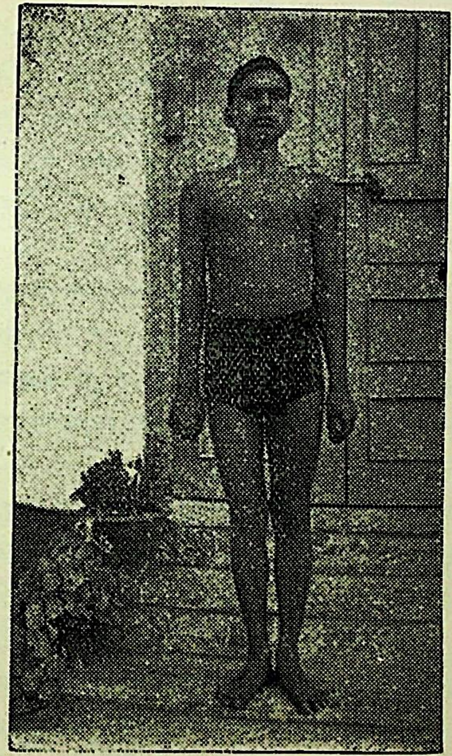

लेखक : स्वस्थ होनेके बाद

पीता और शराब तो मेरे पिताजी रोज अपने साथ पिलाते थे। पावभर वह रोज खुद पीते, छटांक-डेढ़-छटांक मुझे देते। वह समझते थे कि मेरी कमजोरी इसीसे जायगी।

जो मुझे देखता था, कहता था कि शराब पीओ, यह तराई है, यहाँ जो पानी लगता है शराबसे ही उतरता है। इसलिए शराब चली, पर पानी लगा ही रह गया और शराब भी लगी !

मुझे बेहद कमजोरी थी। चलना कठिन था। तीन-चार फर्लांग चलता तो इतनी थकान होती कि लेटनेको जी चाहता, दम फूलने लगता। यह दमका फूलना एक सालसे चला आ रहा था। गर्मीमें ज्यादा हो जाता। दमका फूलना खांसीके दबनेके बाद शुरू हुआ था। पहले खांसी थी। वैद्यजीने दवा दी। खांसी गई और दमा आ गया।

मुझे गठिया भी था जो दो वर्षसे चल रहा था। जोड़ोंमें महीने-बीस दिनपर एक बार दर्द हो जाता जो बारह घंटेसे लेकर चौबीस घंटेतक रहता। पर इतने ही वक्तकी पीड़ा मुझे अधमरा बना देती। जबतक दर्द रहता पीड़ाके कारण खाया-पीया न जाता।

यह नहीं है कि यह सब तकलीफें मैं झेलता रहा और कोई चिंता नहीं की। चिंता मुझे और मेरे घरभरको थी। स्थानीय डाक्टर-वैद्योंकी दवा चलती रहती। जब किसीकी दवासे लाभ नहीं हुआ तो मुझे लखनऊ ले जाया गया। वहाँके बड़े अस्पतालके सिविल सर्जनने मेरे स्वास्थ्यकी परीक्षा की और मेरे दमेके निवारणके लिए करीब दो दर्जन सूइयां लगाईं।

इंजेक्शनोंसे मुझे कुछ लाभ मालूम हुआ। तीन महीनेतक लगे। दमा चला गया। पर तीन महीने बाद हालत धीरे-धीरे पहले-जैसी हो गई। अब दमेका दौरा रातमें भी आने लगा। इसकी वजहसे सोना मुश्किल हो गया। दम जोरोंसे

चलता। घरवाले घबराते रहते और मेरी खाटके पास बैठे रातों जागते रहते।

मेरे संबंधी इसी खोजमें थे कि मेरे रोगकी कोई अच्छी दवा मिल जाय। वे गोरखपुर आए और अपने मित्रों एवं परिचितोंसे पूछ-ताछ करने लगे। इरादा था कि यदि गोरखपुरमें कोई सुभीता न बैठा तो फिर कहीं बाहर देखा जाय। इसी समय उन्हें किसीने गोरखपुरके आरोग्यमंदिरका पता बताया, जहांसे कितने ही दमेके रोगी अच्छे होकर जा चुके हैं। उन्हें इसका विश्वास होनेपर मुझे वहाँ दाखिल करा दिया गया।

प्राकृतिक चिकित्सालयमें मैं ९६ दिन रहा। चिकित्सा मेरी यों शुरू हुई :—

दस दिनतक मुझे सवेरेसे दोपहरतक उपवास कराया जाता और दोपहर और शामको खानेके लिए चोकरसमेत आटेकी रोटी और सब्जी मिलती। चिकित्सामें सवेरे और शाम तीन-तीन मिनटका कटिस्नान और करीब दस बजे दिनको पेडूपर गीली मिट्टीकी पट्टी रखनेके बाद एनिमाद्वारा मेरा पेट साफ कराया जाता।

दस दिन बाद भी चिकित्सा यही चलती रही पर भोजनमें रोटी-सब्जीकी जगह फल-दूध मिलने लगा। सवेरे-दोपहर-शाम मैं तीन बार फल-दूध लेता। आरंभमें एक-एक पाव दूध लिया पर धीरे-धीरे एक बारमें आध सेरसे लेकर रोज डेढ़ सेर लेने लगा। फल कुल कोई सेरभर लेता। फलोंमें उस वक्त नासपाती और अमरूद आ रहे थे, वही मुझे दिए जाते।

पंद्रह दिन बाद चिकित्सा थोड़ी बदली गई। एनिमा मुझे तभी दिया जाता जब कब्ज रहता। पर कब्ज अब चला

गया था। दस-पंद्रह दिनमें एक बार एनिमा लेनेकी जरूरत पड़ती। कटिस्नानकी जगह मेहननहान बताया गया जिसे मैंने तीन मिनटसे शुरू करके एक सप्ताहमें सात मिनटतक कर लिया। शामको चार बजे रोज छातीपर गीली पट्टी बांधी जाती। एक गीला कपड़ा छातीपर लपेटनेके बाद उसपर ऊनी कपड़ा लपेट दिया जाता। यह पट्टी करीब घंटे-भर रहती।

शामको पांच बजे मुझे योगासन कराए जाते। आरंभमें आसन तो मैं मुश्किलसे कर पाता। पर एक सप्ताहमें ही मुझे आसनोंका ठीक अभ्यास हो गया और मैं उन्हें ठीक-ठीक करने लगा।

ताकत आनेपर सवेरे मेहननहान लेनेके बाद कुछ कसरतें करने लगा। ये कसरतें दंड-बैठक नहीं थीं, बल्कि बहुत हल्की कसरतें थीं जो मुझसे धीरे-धीरे पंद्रह-बीस मिनटतक कराई जातीं।

फल-दूध एक सप्ताह चलानेके वाद मुझे दो दिनका उपवास कराया गया। और फिर भोजनमें दोपहर-शाम रोटी-सब्जी मिलने लगी। नाश्तेमें सवेरे आध सेर गायका कच्चा दूध और दो अमरूद।

चिकित्साके आरंभसे ही मुझे थोड़ा-थोड़ा लाभ मालूम होने लगा। पर बीच-बीचमें कमजोरी बहुत बढ़ जाती, गठिया-का दर्द कभी-कभी आ जाता। जो पहले केवल पैरमें ही आता था वह एक बार हाथ-पैर दोनोंमें ही आ गया। यह देखकर मेरी चिंता बढ़ जाती, लगता कि यह चिकित्सा भी मेरे लिए व्यर्थ सिद्ध होगी ? इस समय मुझे चिकित्सकका आश्वासन बहुत शक्ति और आशा देता। वे बताते कि ये सब उभार

हैं, रोगका बढ़ना इस बातका सूचक है कि रोग शीघ्र जानेवाला है। और हुआ भी ऐसा ही। पचहत्तर दिन बाद मुझे कोई उभार नहीं हुआ, रोगका कोई लक्षण नहीं रहा, फिर भी मैं तीन सप्ताह चिकित्सालयमें और ठहरा। इस वक्त मैंने कुछ और कसरतें सीखीं जो पहली कसरतोंसे कठिन थीं। इनको करनेसे ताकत खूब बढ़ी।

मैं स्वस्थ रहनेका सही तरीका जान गया हूं। समझ गया हूं कि नित्य कसरत करने और ठीक भोजन करते रहनेपर किसीको कभी भी कोई बीमारी नहीं हो सकती।

—श्रीरामलखन गुप्त

: ६ :

दमा

मुझे विश्वास है कि मेरी कहानीसे बहुतसे लोग नसीहत लेंगे जिसने मुझे नीरोग ही नहीं बना दिया अपितु अपनी सहायतासे मुझमें एक ऐसा परिवर्तन ला दिया जिसके कारण मैं आज स्वस्थ और सबल होनेका दावा कर रहा हूं। सन् १९४७ ई० में जब नोआखालीमें साम्प्रदायिकताका विष फैला हुआ था और उसे शांत करनेके लिए राष्ट्रपिता महात्मा गांधी वहीं धूनी जमाए हुए थे, मैं भी वहां गया था। हां, असावधानीके कारण मुझे सर्दी-खांसी हो गई। और वहांसे लौटनेपर भी मैं उससे मुक्ति न पा सका। वह कई महीनोंतक उसी तरह घटती-बढ़ती रही, क्योंकि उन दिनों मैं अपने जीवनको बड़ी अवहेलनाकी दृष्टिसे देखने लग गया था। परिणाम यह हुआ कि वही सर्दी-खांसी मेरी गलतियोंके कारण बढ़ती-बढ़ती दमेके रूपमें परिणत हो गई और रोज आधी रातके बाद मेरा सोना सपना हो गया। खांसी और खांसीकी गति इतनी कष्टदायक हो गई कि मैं कभी-कभी आत्महत्याकी बात भी सोचने लग गया।

दमेका कष्ट इतना प्रबल और असह्य होता है कि जो भुक्त-भोगी हैं वे ही समझते हैं। जो लोग रोगीको कष्ट भोगते देखते हैं वे लोग भी स्तंभित हो उठते हैं। मैं तो इस दुःसह रोगसे आतंकित रहने लग गया और इसके दौरेके आभास पाकर ही मैं दहल उठता था। मैंने इससे मुक्ति पानेके लिए

अनेक प्रयत्न किए, परंतु किसी प्रकार भी मुक्ति न पा सका। अंतमें मैंने गोरखपुरके आरोग्यमंदिरमें जाकर अपनी समुचित चिकित्सा करानेका निश्चय किया। वहांके चिकित्सकने मेरी सारी दुःख-कहानी ध्यानपूर्वक सुनी। उसी दिनसे मेरी प्राकृतिक चिकित्सा भी आरंभ हो गई। इस चिकित्साके आरंभमें ही मुझे यह बतला दिया गया था कि चिकित्साके दरमियानमें दमेका दौरा यदि अधिक हो जाय तो घबराना नहीं चाहिए; क्योंकि प्राकृतिक चिकित्सा रोगोंको, जो भीतरी विकारोंके बाहरी लक्षणमात्र हैं, दबाती नहीं है। सबके मूलमें रहनेवाले उन विकारोंको निकालकर यह बाहर फेंक देती है जिससे कि जीवन अपनी नैसर्गिक अवस्थामें आ जाता है। यही कारण है कि कभी-कभी उन विकारोंको बाहर निकालनेकी क्रिया प्रबल हो उठती है और वही रोगके रूपमें नजर आती है।

मेरी चिकित्सा दो तरफा हुई। एक तरफ तो कई तरहके बाहरी उपचार आरंभ किए गए। इन उपचारोंमें भोजनका नियंत्रण, प्रतिदिन प्रातः-संध्या टहलनेका क्रम तथा कुछ और भी उपचार सम्मिलित थे। दूसरी तरफ मेरे मस्तिष्कको समझानेका क्रम भी चालू कर दिया गया कि रोग क्या है? उसके कारण क्या हैं? चिकित्सा कैसी और क्यों होनी चाहिए? प्राकृतिक चिकित्साकी विशेषता और उपयोगिता क्या है? सत्य यह है कि चिकित्सा केवल मेरे शरीरकी नहीं हो रही थी बल्कि मेरे मन और बुद्धिको भी ठीक किया जा रहा था। यही कारण है कि वहांसे चिकित्सा कराकर बाहर आनेवाले केवल नीरोग होकर ही नहीं लौटते किंतु; एक छोटे-मोटे चिकित्सक होकर आते हैं। मेरी मानसिक एवं बौद्धिक चिकित्सा उपयुक्त पुस्तकोंके अध्ययनके द्वारा तथा चिकित्सकके व्याख्यानोंद्वारा होती थी।

मैं प्रतिदिन उषाकालमें उठ जाता था और निपटकर मैदानमें टहलने चला जाया करता था। टहलते समय कैसे

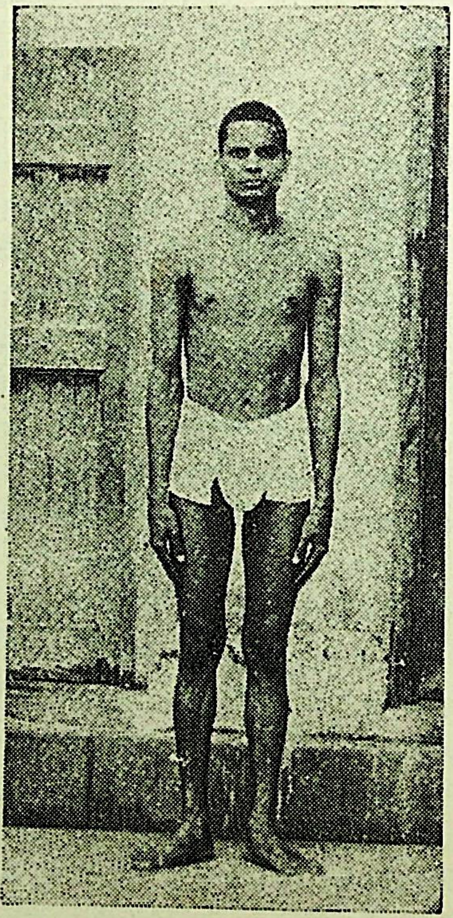

लेखक : चिकित्साके पहले

चलना चाहिए एवं किस प्रकार श्वास लेना चाहिए आदि आव-

श्यक बातें भी मुझे पहले ही बता दी गई थीं। रास्तेमें प्रायः प्रतिदिन मुझे स्वयं चिकित्सक महोदय टहलकर लौटते मिल

लेखक : स्वस्थ होने पर

जाया करते थे और मेरे स्वास्थ्यकी खबर पूछकर एक-न-एक

प्रभावोत्पादक इंजेक्शन देते थे। यह इंजेक्शन बातोंका ही होता था। इसका मेरे मस्तिष्कपर गहरा प्रभाव पड़ता था और मैं क्रमशः अपनेको अधिक स्वस्थ महसूस करने लग जाता था। रास्तेमें ही बहुतसे अमरूदके बाग पड़ते थे। ३-४ ताजे अमरूद खरीदकर वहीं खा भी लेता था। यही मेरा प्रातःकाल-का नाश्ता था। लौटकर थोड़ा इधर-उधर टहलता, कुछ पढ़ता, कुछ बातें करता और इस प्रकार हँस-खेलकर प्रातःकाल-का समय व्यतीत कर देता। फिर चिकित्सक महोदयकी आज्ञानुसार कुछ अन्य बाहरी उपचार आरंभ किए जाते थे। कभी छातीपर गीली पट्टी, कभी पेड़ूपर मिट्टी, कभी वाष्प-स्नान, कभी मालिश, कभी धूपमें लेटना आदि अनेक ऐसे उपचार किए जाते थे जिनसे शारीरिक लाभके साथ-ही-साथ एक ऐसा मनोवैज्ञानिक वातावरण तैयार होता था कि रोगी अपने रोगको भूल जाता था। इसके बाद जलसे भरे टबोंमें प्रचुर जलसे शरीरको खूब मल-मलकर स्नान करता और फिर छतपर जाकर थोड़ा-सा प्राणायामका भी अभ्यास करता था।

ठीक बारह बजे भोजनके लिए चला जाता था। भोजन रोटी, काफी तरकारी, कभी-कभी गेहूंका दलिया आदिके रूपमें मिलता था। पहले पहल यह भोजन, लाभकारी होते हुए भी स्वादिष्ट नहीं लगता था। किंतु धीरे-धीरे ऐसा अभ्यास हो गया कि इसीमें अधिक-से-अधिक स्वाद मिलने लगा। भोजनके साथ उसकी विधि और वहांका वातावरण बड़ा सुहावना और घरेलू रहता था। प्रायः सभी लोग एक साथ बैठकर खाते थे और इसमें वहांके चिकित्सक तथा उनके सभी सहकारी संमिलित रहते थे। सबका भोजन उनके रोगके अनुसार भिन्न प्रकारका हुआ करता था। मेरे भोजनकी

एक विशेषता यह थी कि मैं नमक बिल्कुल नहीं खाता था। हम सबकी भोजन-क्रिया "सह नौ भुनक्तु" आदि वैदिक मंत्रके उच्चारण और सार्थकताके साथ आरंभ होती थी। भोजन समाप्त कर लेनेके बाद मैं अपने कमरेमें चला जाता था और वहीं कुछ आराम करता था, कुछ पढ़ने-लिखनेका क्रम भी चलाता था। चिकित्सक महोदय मुझे कुछ ऐसा लिखने-पढ़नेका काम दे देते थे जिससे कि मैं रोगको भूलकर अपने काममें व्यस्त रह सकूं और साथ ही रोगोंके वास्तविक स्वरूपको ठीक-ठीक समझ भी सकूं। इसी समय मैं प्राकृतिक चिकित्साके संबंधमें लिखे कुछ लेख एवं कुछ पुस्तकें पढ़ता था।

संध्याके समय पुनः नियमित रूपसे ठीक समयसे निपटना और उसके बाद १५-२० मिनटतक कटिस्नान करना और फिर मैदानमें टहलने जाना ही मेरा नित्यका कार्यक्रम था। टहलकर आनेके बाद संध्याका भोजन और उसके बाद अपने कमरेके सामने छतपर खुली हवामें बैठकर कुछ पढ़ना या परस्पर कुछ आलोचनाएं करना बड़ा ही सुखद प्रतीत होता था। सोनेके कुछ समय पूर्व ही सभी लोग एकत्र बैठकर कुछ प्रार्थना भी करते थे। यह प्रार्थना "सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत्" में अंत होकर हृदय और मस्तिष्कपर एक ऐसा गहरा प्रभाव छोड़ जाती थी जिससे कि विश्वबंधुत्व, मानवसमानता आदि ऊंचे आदर्शोंके साथ-ही-साथ सुख, शांति और आनंदकी वास्तविक सत्यताके प्रति सबका मन हठात् आकर्षित हो जाता था। वास्तव में यह प्रार्थना स्वतः इतनी पवित्र होती थी कि सत्, चित्, आनंदका एक शाब्दिक स्वरूप खड़ा कर देती थी और जीवनकी उपयोगिताको ठीक तरहसे समझा देनेमें बड़ी सहायक होती थी।

एक बार बीचमें मेरे दमेका दौरा हठात् बड़ा तीव्र हो उठा, परंतु यह तीव्रता इस बार पहलेकी तरह दुःखदायी न होकर सुखदायी प्रमाणित हुई; क्योंकि इस बार भीतरी विकार कफके रूपमें बड़ी तेजीसे बाहर निकल रहे थे और इससे शरीर-को बड़ी राहत मिलती थी। इसी समय दो दिनके लिए उपवास भी करना पड़ा था और बीच-बीचमें कभी-कभी एनिमाका भी प्रयोग करना पड़ा था। इस बार मैंने वाष्प-स्नानके महत्त्व-को ठीक-ठीक समझ लिया; क्योंकि दमेकी सारी तीव्रताको अनुकूल बना देनेमें यह प्रक्रिया बड़ी सहायक सिद्ध हुई थी।

मैं रोगसे मुक्ति पाकर अब क्रमशः अधिक सबल हो रहा था; किंतु कुछ परिस्थितियोंके कारण मुझे घर चला आना पड़ा। यहाँ आकर मैं उसी प्रक्रियाके अनुसार चलता रहा और आज भी उसका अधिकांश भाग मेरे जीवनका अंग बन गया है।

मेरा अब यह दृढ़ विश्वास हो गया है कि यदि मनुष्य यह समझ ले कि रोगोंको पैदा करनेकी जिम्मेदारी तो उसीपर है पर उनको दूर करनेका सबसे उत्तम तरीका यह है कि वह अपने गलत रहन-सहनके तरीकेको छोड़कर प्रकृतिके जिम्मे यह छोड़ दे कि वह उसे नीरोग और सबल बनावे।

—श्रीचंद्रभूषण उपाध्याय एम० ए०, शास्त्री

(२)

दमेसे पिंड छूटा

मुझे प्राकृतिक चिकित्सा कराए तीन वर्ष हो गए, मैं तबसे पूर्णत: स्वस्थ हूं। मेरा दमा फिर कभी न उभरा।

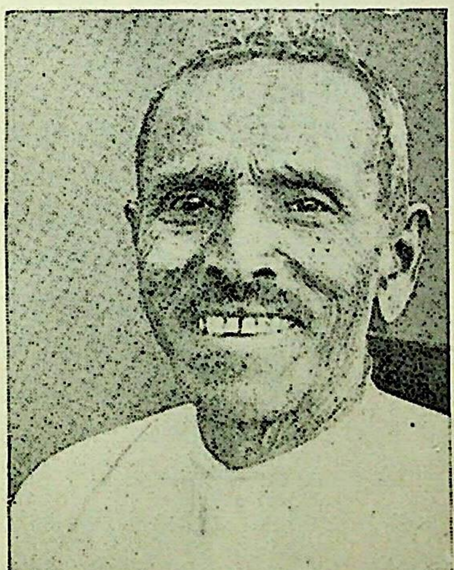

लेखक

आरोग्य-मंदिरमें प्रविष्ट होते समय मैं तीन वर्षसे दमेसे पीड़ित था। पहले-पहल जुकाम हुआ था फिर खांसी। दो महीने खांसी रहकर दमा हो गया। वह इतना कठिन था

कि रातको सोने न देता था। पलथी मारकर बैठता और सिर

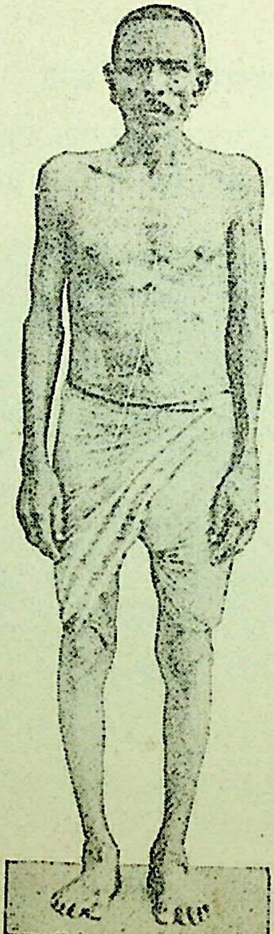

लेखक : चिकित्साके पहले

जमीनसे टिकाए रहता, सांस फूलती रहती। खांसी आती रहती।

रातभरमें गाढ़ा पीला आध पावतक कफ गिर जाता था। लगता, छाती कफसे भरी है । आवाज भारी रहती। शरीर निष्प्राण-सा रहता । दस कदम भी चलना कठिन था।

इसकी मैंने हर तरहकी चिकित्सा कराई, वैद्योंकी शरणमें दो वर्षतक रहा । कितने अरिष्ट-आसव पीए। सेरों च्यवनप्राश खा गया पर दमेने साथ न छोड़ा। लोगोंने कहा, यह बुड्ढा मरेगा, दमा कहीं जाता है ?

इसी समय मेरी भेंट प्रो० केशवप्रसादसिंहसे, जो आरोग्य-मंदिरसे अपनी चिकित्सा कराकर आए हुए थे, हुई। वे वहां अपेंडिसाइटिससे बिना आपरेशनके मुक्ति पाकर आए थे। उन्होंने मुझे भी वहां जानेकी राय दी।

'मरता क्या न करता' मैं वहां गया। दो आदमी मुझे वहांतक पहुंचाने साथ गए थे।

उस समय न मुझसे बोला जाता था, न चला जाता था। चिकित्सकने मुझे आते ही एक बहुत अच्छी साफ हवादार जगह दी और मेरे आरामकी पूरी व्यवस्था कर दी। उन्होंने मुझसे और मेरे साथियोंसे रोगका पूरा इतिहास जाननेके बाद मेरी चिकित्सा शुरू की। पहले दिन मिट्टीकी पट्टी पेडूपर रखनेके बाद एनिमा दिया गया। पेट खूब साफ हुआ। पुराने काले मलके साथ बहुत-सा कफ भी निकला। एनिमाके बाद मुझे ठंडे पानीसे स्नान कराया जाने लगा। मैंने महीनोंसे स्नान नहीं किया था। ठंडी हवा लगते ही तो दमा बढ़कर मेरे प्राण लेने लगता था, मैं डरता था कि यह ठंडा पानी तो मेरी जान ही निकाल देगा। चिकित्सकने मुझे पूरा आश्वासन दिया कि इस स्नानसे कोई नुकसान नहीं होगा । स्नानके बाद मुझे एक घंटे तक कंबल ओढ़कर लेटे रहनेको कहा गया।

खानेको चोकरसमेत आटेकी रोटी, कुछ पकी तरकारियाँ और खीरा (ककड़ी) मिला।

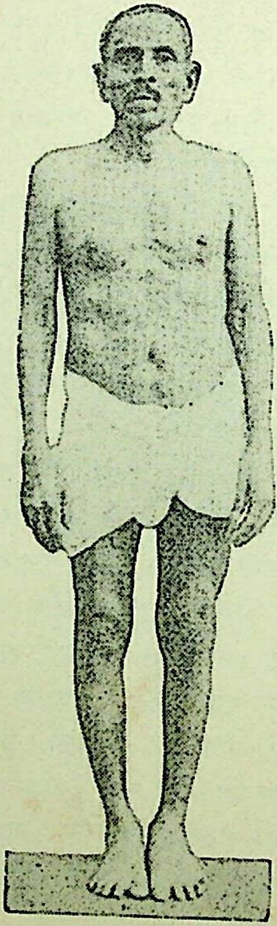

लेखक : स्वस्थ होनेपर

लगभग तीन बजे मुझे दमा आता-सा जान पड़ा, उस समय

मुझे पांच मिनटका कटिस्नान कराया गया जिससे मुझे आराम मिला। छह बजे शामको मुझे दोपहरवाला भोजन मिला। रातको नींद ठीक आई। ऐसी नींद वर्षोंसे न आई थी। सुबह शौचके बाद फिर कटिस्नान दिलाया गया और एक घंटे बाद नाश्ता—नाश्तेमें थोड़ा अमरूद और किशमिश थी। इस प्रकारके भोजनके फलस्वरूप मुझे भूख लगने लगी, दोनों वक्त शौच होने लगा।

चिकित्सामें मुझे सुबह-शाम कटि-स्नान मिलता, दिनके दस बजे कभी मालिश, कभी गीली चादरका बंधन और दिनको तीन बजे एक घंटेके लिए छातीकी गीली पट्टी। छातीकी गीली पट्टी मुझे बहुत राहत देती।

भोजनमें सुबह अमरूदको बदलकर कभी नाख़ लेता, कभी पपीता, दोपहरको भोजनके साथ मैं मूली और प्याज भी लेने लगा। नमक मेरा बंद करा दिया गया था।

डेढ़ महीनेकी चिकित्साके बाद यकायक मुझे ज्वर आ गया। उस समय उपवास कराया गया और ज्वर तीन दिनमें ही उतर गया। ज्वर उतरनेपर एक दिन फलोंका रस और दो दिन केवल फल खानेको दिए गए और मैं फिर पहलेवाले भोजनपर आ गया। कफ बंद हो चला था पर ज्वरके दिनोंमें वह फिर खूब आया और ज्वरके बाद ही बंद हो गया। उसके बाद कभी न आया।

ज्वरके बाद मेरा स्वास्थ्य तेजीसे सुधरा। शक्ति भी खूब आई। मैं सुबह और शामको चार-चार मील टहलने लगा। ताज्जुब यह कि मुझे भोजनमें केवल रोटी, सब्जी, फल ही मिले, न दूध, न दही, न घी, न मेवे, न गुड़, पर वजन भी बढ़ा और शक्ति भी।

घर आकर मैं तीन महीनेतक वही भोजन करता रहा। अब भी वैसा ही करता हूं यद्यपि वैसा परहेज नहीं कर पाता फिर भी नित्य कुछ मौसमके फल और तरकारियां खानेका ध्यान रखता हूं।

श्रम मैं खूब करता हूं। खेत मेरे पास बहुत हैं, पर दूर-दूर। इस खेतसे उस खेत जाना, खड़े होकर मजदूरोंसे काम कराना—इन सब कामोंमें मुझे आठ-दस मील रोज जाना पड़ता है, कभी-कभी सोलह-बीस मीलतक भी चलना पड़ता है। लोग डरते हैं कि इतनी कड़ी मिहनतसे मेरा स्वास्थ्य कहीं बिगड़ न जाय। पर मैं जानता हूं कि मेरा स्वास्थ्य बढ़िया होनेका रहस्य तो श्रम ही है। इस पचहत्तर वर्षकी उम्रमें जवान बेटे-पोतोंको थकानेकी ताकत मुझे श्रमने ही दी है।

—श्रीशिवदयाल शर्मा

(३)

मैं गत पंद्रह वर्षोंसे दमेसे भीषण रूपसे पीड़ित था। दवा करते-करते थककर इस रोगको असाध्य समझ बैठा था। हां, जब-जब इस रोगका विशेष प्रकोप होता था, मैं इसे शांत करनेके निमित्त इंजेक्शन ले लिया करता। उससे रोग थोड़े समयके लिए शांत हो जाता। इसी बीच मुझे गोरखपुरके आरोग्य मंदिरका पता चला और यह ज्ञात हुआ कि वहांसे दमेके अनेक रोगी अच्छे होकर गए हैं। मैं वहां गया और चिकित्सकसे अपनी सारी दास्तान कही। चिकित्सक महोदयने मुझे इस रोगके निवारणके लिए प्राकृतिक जीवन बितानेका परामर्श दिया और कृपा करके मेरे लिए एक छोटा-सा कार्यक्रम बना

दिया। मैं उसके अनुसार चलने लगा, पर सशंक हृदयसे—सशंक इसलिए कि मैं बहुतसे चिकित्साक्रम देख चुका था। पर कुछ ही दिनके अनुभवने मेरी शंका दूर कर दी। मेरी दिनचर्या यह है—

१—मैं संध्या-समय आधी छटांक किशमिश एक पाव पानीमें भिगो देता हूं और सवेरे उठते ही वह पानी पीकर शौच आदिके लिए जाता हूं। किशमिश नाश्तेमें लेता हूं।

२—फिर टहलने निकल जाता हूं। अब रोज सवेरे छः मील टहल लेता हूं। इसमें मुझे सवासे डेढ़ घंटेतक लगते हैं।

३—टहलनेके बाद आकर गायके दूधका डेढ़ पाव मठा लेता हूं और आधी छटांक रातकी भीगी किशमिश।

४—दोपहरको १२ बजे और शामको ६ बजे चोकरसमेत गेहूंके आटेकी रोटी और हरी तरकारियां—करीब आध सेर खाता हूं। उनमें कोई मसाला नहीं होता, नमक भी नहीं होता।

रोगावस्थामें मैं इतना कमजोर था कि थोड़ी दूर पैदल चलना मुश्किल था। मैंने धीरे-धीरे पैदल चलनेकी आदत डालना आरंभ किया। इससे मुझमें शक्ति आने लगी। और रोग भी धीरे-धीरे शांत होने लगा। रोग शांत होनेकी अवस्थामें मेरी रुचि टहलनेमें और अधिक होने लगी और मैंने टहलनेकी दूरी बढ़ाना आरंभ कर दिया। अब तो इतना टहले बगैर मुझे चैन नहीं पड़ती। टहलना तो मेरे जीवनके साथ लग गया है। इसमें मुझे विशेष आनंद मिलता है। इसी प्रकार प्राकृतिक जीवनका मेरे ऊपर ऐसा प्रभाव पड़ा कि मेरा शरीर पूर्ण स्वच्छ हो गया। कब्जकी शिकायत मुझे बराबर रहती थी। वह बिल्कुल दूर हो गई। अब मैं सदैव प्रातः एवं सायंकाल शौचके लिए जाया करता हूं और शौच मुझे खूब खुलकर होता है। मैं

तो यह कहूंगा कि मेरा भीषण दमा कब्ज-निवारणके ही कारण इतना शीघ्र गया। प्राकृतिक भोजन मेरे जीवनका प्रधान अंग हो गया है। अब मुझे प्राकृतिक भोजनके अतिरिक्त किसी भी अप्राकृतिक भोजनकी आवश्यकता नहीं होती। उसकी याद भी नहीं आती।

उक्त कार्यक्रमके अतिरिक्त मैंने रोग-निवारणके लिए कुछ भी नहीं किया, बस इतना ही करनेपर तीन मासके अंदर ही मेरा रोग पूरी तरह दूर हो गया ?

रोगकी अवस्थामें मेरा वजन ९४ पौंड था, किंतु अब १०० पौंड हो गया है। अब मैं पहलेसे अपनेको बहुत अधिक सशक्त पाता हूं और अपने सब काम बड़ी सरलतासे करता हूं। मुझे किसी तरहकी थकावट नहीं मालूम होती। मुझसे जब कोई किसी भी रोगके संबंधमें पूछता है तो उसे मैं यही कहता हूं कि आप प्राकृतिक जीवनपर आ जाइए, रोग बड़ी जल्दी भाग जायगा।

—श्रीकामता सिंह

: १० :

संग्रहणी

पांच-सात साल पहलेकी बात है मैंने रेलवे बुक-स्टालसे 'विश्ववाणी' की एक प्रति खरीदी उसमें पं० सुंदरलालजीका एक लेख था 'सेवाग्राममें भोजनसे इलाज'। इसमें डा० सतीश-चंद्रदास* के भोजनसंबंधी सिद्धान्तोंकी संक्षिप्त व्याख्या थी। सिर्फ इस लेखने स्वास्थ्य और चिकित्साके संबंधमें मेरे सारे पुराने संस्कारोंकी 'भीत' ढाह दी और प्राकृतिक चिकित्साकी ओर मेरी दृष्टि फेर दी। अब मेरे खान-पान, रहन-सहन, रोग-चिकित्सा-संबंधी विचारोंके साथ इसी लेखकी धारणाएं चलने लगीं और दवापरसे मेरी आस्था उठ ही गई। पास-पड़ोसमें अनुकूल वायुमंडल न था, न संगत, फिर भी मैं अकेला अनेक कल्पनाएं, अनेक संकल्प करते हुए, एक अनूठी श्रद्धाके साथ प्राकृतिक जीवनके नियमोंको यथासाध्य निबाहनेका प्रयत्न करने लगा। दो-दो महीने बुखार आया पर मैंने कुनैन नहीं खाया। रोटी-भातके साथ दाल खाना छोड़ दिया, बाजार या घरकी तली-भुनी चीजें, मिठाई-खटाई खानी छोड़ दी, रोज चार-छह मील टहलने लगा, नशीली चीजें तथा मांसाहार छोड़ दिया।

---

*'आदर्श आहार' पुस्तकमें डा० दासके भोजनसंबंधी सारे विचार आ गए हैं। यह पुस्तक आरोग्य मंदिर, गोरखपुरसे प्रकाशित हुई है। दाम १) है।

सुयोगसे अपने लड़केकी बीमारीके सिलसिलेमें मैं गोरखपुरके आरोग्य मंदिरमें पहुंच गया, जिस चिकित्सालयको देखने, जानने और वहांसे कुछ सीखने-समझनेके लिए मैं बहुत दिनोंसे उत्सुक था।

चि० रविदेव गांवमें स्कूलके अभावके कारण मेरे घरसे छह मील दूर मेरे एक विद्वान् मित्रके पास रहता और उनसे पढ़ता था। वहीं उसे रक्तके आंव शुरू हुए। लगभग एक महीने वहां साधारण दवा करता रहा। किंतु जब आंवमें कोई राहत न हुई तो विशेष चिकित्साके लिए घर बुला लिया गया। मैं स्वयं अपने ऊपर इतना विश्वास नहीं कर सकता था कि इसकी चिकित्सा अपने जिम्मे लेता। अतः स्थानीय अस्पतालके डाक्टर-द्वारा इसकी चिकित्सा शुरू हुई। उसी बीचमें कुछ राजनीतिक कारणोंसे मुझे घर छोड़ना पड़ा। चिकित्सा कुछ-कुछ चलती रही, लेकिन बीच-बीचमें सुना करता था कि 'लड़केका आंव अच्छा नहीं हो रहा है'।

घर-बार छूटनेकी चिंताके साथ एक चिंता यह और भी पीछे लगी रहती—लड़केको यह कैसी बीमारी लगी? अच्छी क्यों नहीं हो रही है। कैसे अच्छी होगी? यही हाल रहा तो बच्चेकी जिंदगीका क्या होगा? इत्यादि। पांच-छह महीने बीतनेपर लड़केको मैंने अपने पास काशी बुलवा लिया। और वहां मित्रोंकी रायसे एक बड़े डाक्टरकी दवा देनी शुरू की। किंतु फिर भी डाक्टरी दवासे मुझे बिलकुल संतोष नहीं हो रहा था। मेरी अंतरात्मा छटपटा रही थी, मन-ही-मन मैं कुढ़ रहा था, कष्ट पा रहा था। मेरे लड़केके लिए जो चाहिए वह कोई दूसरी चीज है, यह नहीं। प्राकृतिक चिकित्साका

संस्कार और उसके प्रति विश्वास मेरे रक्त-मांसमें भिदा था। वही मेरे मस्तिष्कमें घूम रही थी।

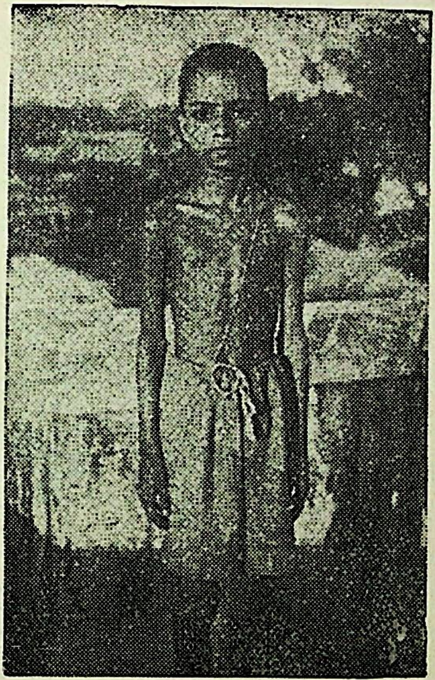

रविदेव : चिकित्साके पहले

इसी समय मेरे हितैषी सज्जन श्रीकाशीराज शर्माका पता चला जो वहीं पढ़ रहे थे और इधर वह प्राकृतिक जीवनके समर्थक हो गए थे। डूबतेको तिनकेका सहारा मिला। में उनसे मिला। उन्होंने मेरे साथ बड़ी सहानुभूति दिखलाई और लड़केको अपने पास रख लिया। मिट्टीकी पट्टी, कटि-स्नान, रसाहारद्वारा उसकी चिकित्सा शुरू की। करीब पंद्रह

दिन बीते बीमारकी हालतमें कोई सुधार न दिखाई दिया। इससे आगे वह अपनेपर विश्वास न कर सके और उन्होंने एक दूसरे प्राकृतिक चिकित्सक डाक्टरको दिखानेकी राय दी—जो स्विटजरलैंडसे भारत-भ्रमणके लिए आये हुए थे और

रविदेव : चिकित्साके दो वर्ष बाद

उस समय काशीमें थे। उन्हें दिखलाया गया। उन्होंने चिकित्सा शुरू की। वे कटिस्नान कराते थे और बच्चेके सारे अंगोंको अनेकों प्रकारसे मोड़ते, मरोड़ते और चटखाते थे—व्यायाम

करानेके रूपमें। पथ्यमें केला, संतरा, टमाटर इत्यादि देते रहे। इस प्रकार करीब बारह दिन इनकी चिकित्साके बीते; किंतु लाभ कुछ भी न हो रहा था।

अब मैं बहुत घबराने लगा। काशीराजजी पूरे जिम्मेदार व्यक्ति न थे। स्विस डाक्टर संयोगवश मिले हुए एक पर्यटक थे। एक महीना लगभग सिर्फ रसाहार, फलाहारमें बीत चुका। बीमारी यथावत् बनी हुई थी, अंतमें मैं सब कुछ छोड़-छाड़कर लड़केको लेकर गोरखपुरके आरोग्य मंदिरमें पहुंचा। वहांके चिकित्सकसे मिलकर सारी हालत बतलाई। उन्होंने बड़ी सहानुभूति दिखलाई और कहा, "आप जैसे चाहें मंदिरसे फायदा उठा सकते हैं।"

यहां रविदेवको फल देना बंद कर दिया गया। पथ्यमें सिर्फ मट्ठा दिया जाने लगा और कटिस्नान तथा पेड़ूके सेंककी चिकित्सा होने लगी। एक महीना बीता। आंवरक्त क्रमशः कम होते गए, किंतु बंद न हुए। ऐसी स्थितिमें यहां भी मैं शंका और द्विविधाओंमें पड़नेसे न बच सका। सोचता—आखिर महीने दिनकी चिकित्साके बाद भी आंव बिल्कुल बंद क्यों नहीं होती? क्या लक्ष्य स्थानपर पहुंचने पर भी भाग्यमें कुछ और ही बदा है? किंवा यहां या इस पथमें भी कोई छल या प्रचार तो नहीं है। हृदयमें बड़ी वेदना होती। चिकित्सकसे पूछनेपर शांतिपूर्वक उत्तर देते—'घबरानेकी कोई बात नहीं, इसी क्रमसे बच्चा अच्छा हो जायगा'। किसी तरह दिल थामकर रहता।

दूसरी ओर लड़का था कि बिना कोई आग्रह, बिना कोई शिकायत चुपचाप चिकित्सा निबाहे चला जाता था। उत्साहपूर्वक अपना मट्ठा मंगवाता, उसकी सार-संभाल करता, बार-

बार उत्साहके साथ पीता, उसकी तारीफ करता, मंदिरकी व्यवस्थाका निरीक्षण करता, किताबें पढ़ता और शांत, प्रसन्न दिन बिताए जाता। चिकित्सक महोदय उसकी प्रशंसा करते--'बच्चा होते हुए यह बड़ी शांतिसे चिकित्सा चला रहा है। मैं इससे बहुत प्रसन्न हूं।' इस तरह एक महीना चिकित्सामें और लगा। किंतु इधरके लाभके क्रमसे मैं संतुष्ट था। क्योंकि अब पथ्यमें क्रमशः बेल, केला और नरम भात दिया जाने लगा था। अब मलके साथ रक्त केवल छींटे-छींटेके रूपमें निकलता था। अब रोगके अच्छे हो जानेमें कोई संदेह नहीं किया जा सकता था।

इस प्रकार अनेक शंकाओं और द्विविधाओंपर मेरी श्रद्धाकी विजय हुई। प्राकृतिक चिकित्साके द्वारा मैंने अपनी श्रद्धा और विश्वासके अनुरूप फल पाया। रविदेव अच्छा हुआ और घर गया।

मुझे यहां यह कह देना चाहिए कि मैं प्राकृतिक जीवनका नियमित साधक जितना कुछ पहले था अब नहीं रह गया हूं। जीवनकी दिशा बदलनेके साथ-साथ मेरे रहन-सहन, खान-पानकी स्थिति भी बहुत कुछ बदल गई है। किंतु उसके प्रति मेरी आस्था अटूट है और उसके पालनके लिए यथासंभव प्रयत्नशील रहता हूं। प्राकृतिक जीवनको मानकर और उसको साधकर मैं यद्यपि अपने शरीरका कोई विशेष परिवर्तन नहीं कर सका हूं फिर भी उसकी आस्थाके कारण मेरी बहुत-सी बुरी आदतें छूट गई हैं और उसीकी ओर दृष्टिकोण रहनेके कारण स्वास्थ्यके संबंधमें उचित-अनुचित जो आचरण करता हूं उसे ईमानदारीके साथ अनुभव करनेका प्रयत्न करता हूं। अपने प्रयत्नोंकी शिथिलता एवं असावधानियोंको देख सकता हूं। सोचता हूं ईश्वर

ऐसी अवस्था या अवसर मेरे लिए उपस्थित करेगा जब मैं दृढ़ प्रयत्नोंके साथ इस पथपर आगे बढ़ूंगा और इसके द्वारा प्राप्त होनेवाले जीवनके अलौकिक आनंदको प्राप्त करूंगा, जिसका मैं कुछ दिनोंके साधनसे पहले अनुभव कर चुका हूं।

मेरा तो यह हाल है। उधर लड़केको भी प्राकृतिक चिकित्साने पकड़ लिया। इस बीच एक बार, रविदेव मिला तो कहने लगा—"पिताजी, लोभवश मैं जब कभी कोई वैसी चीज खा लेता हूं जो प्राकृतिक सिद्धांतोंके प्रतिकूल होती हैं तो बादको मुझे अच्छा नहीं लगता।" तो मैंने उसकी पीठ ठोंकते हुए कहा "चलो बेटा, अब सिद्ध हो गए।" अब उसके खान-पान, रहन-सहनके संबंधमें मुझे कोई चिंता नहीं होती। सोचता हूं अब जब वह स्वयं सोचने-समझने, अनुभव करनेकी शक्ति, दृष्टि और दिशा पा गया है तो फिर मुझे क्या चिंता? अपना लाभ समझकर जो करेगा अच्छा करेगा।

—श्रीभोलानाथ

(२)

डेढ़ साल पहले तो मैं बिल्कुल अच्छा था। अपना खेतीका काम मौजसे करता था। सात बीघे खेतमें हम घरके सारे प्राणी, जो गिनतीमें सात हैं, लगे रहते और उससे अपना खाना-कपड़ा सभी निकाल लेते। ऐसी दशामें बीमार पड़ना बहुत अखरा। चिंता होने लगी कि काम कैसे चलेगा? पर बीमार तो हो ही गया। पहले, खानेके बाद पेट फूलने लगा, फिर दस्त आने लगे। पर भूख नहीं गई थी। भोजन तृप्त होकर करता। लेकिन खानेके बाद ही जबतक सारा खाना निकल

न जाता टट्टियां होती रहतीं, वीस-पच्चीसतक। धीरे-धीरे कमजोरी बढ़ी, शरीर बिल्कुल शिथिल रहने लगा।

इसीके साथ एक और नई बीमारी हो गई, 'धात' गिरने लगी। पेशावके वाद सफेद चिकना-सा कुछ गिरता। वैद्यजीसे कहा तो धातु-क्षीणता बतलाई।

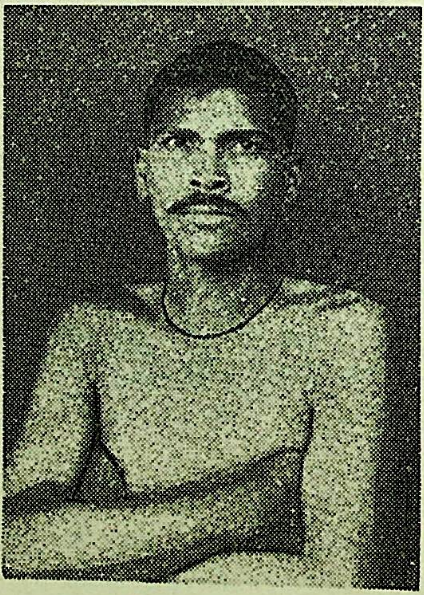

लेखक

गांवके वैद्यजी सालभरसे मेरी चिकित्सा कर रहे थे। खास रोग संग्रहणी बताया था। कभी हड्डीका हल्का ज्वर भी बता देते। दवा चल रही थी। इधर वदन सूखकर कांटा हुआ जा रहा था। दवासे सिवा नुकसानके कभी लाभ न दिखाई दिया। मुंहमें निनावा और रहने लगा। सारा मुंह

छोटी-छोटी फुंसियोंसे भरा रहता। खाना मुश्किल हो गया। कुछ भी खाता तो लगता कांटे खा रहा हूं। जबानपर कुछ भी रखना कठिन हो गया और यह तो था ही कि यदि कुछ भी खा लेता तो तुरंत पाखाने जाना पड़ता। पेटमें हमेशा हड़-हड़ ही हुआ करती। लगता, पेट चिल्ला रहा है। शरीरके सारे अंग फरका करते। दिमाग, लगता था दिमाग है ही नहीं। सोचनेकी शक्ति जाती रही। चिंता घेरे रहती। भली चीज़ बुरी लगती। इच्छा होती न कोई मुझसे बोले न मैं किसीसे बोलूं। चुपचाप मुझे पड़ा रहने दिया जाय पर चुप पड़ा रहता तो घबराहट होने लगती। अजीब हालत थी। ताकत नहीं थी कि कुछ चल-फिरकर दिल बहलाऊं।

ऐसी दशामें एक दिन घरके दरवाजेपर बैठा था कि मेरे एक स्कूली साथी मिलने आए। मेरी हालत समझकर उन्होंने कहा कि तुम कुदरती इलाज कराओ और उसके लिए मुझे गोरखपुर जानेको कहा। वे खुद इसी इलाजसे अच्छे हो चुके थे इसलिए मुझे उनकी बात माननी पड़ी। घरवाले भी जोर देने लगे।

गोरखपुर आकर मैं अपनी बड़ी बहनके यहां ठहरा और आरोग्य मंदिरमें अपना इलाज करानेकी अपनी इच्छा उनसे प्रकट की। मेरी और मेरी बहनकी बात मेरा भांजा भी खड़ा सुन रहा था। वह आरोग्य मंदिरके रोगियोंके हाथ समाचार-पत्र बेचता है, अतः वह वहांसे परिचित था। वह वहां दूर-दूरसे आए रोगियोंको स्वस्थ हो-होकर जाते रोज देखता था, अतः उसने भी मुझे वहां जानेकी राय दी। राय क्या दी, अपनी अखबार बांटनेवाली सायकिलपर मुझे बैठाया और वहां ले गया। वहांके चिकित्सकने मेरे स्वास्थ्यकी जांच की,

मेरे रोगका इतिहास सुना और कहा कि चिकित्सा करो, जरूर अच्छे हो जाओगे। चिकित्सामें मुझे उन्होंने बताया कि सवेरे और शामको पेड़ूपर आध-आध घंटे मिट्टीकी पट्टी रखो और एक पट्टी उन्होंने खुद मेरे पेड़ूपर रखकर बता दिया कि मिट्टी-की पट्टी इसे कहते हैं और ऐसे रखी जाती है और भोजनमें उन्होंने कहा कि दिनभर केवल मट्ठा पीओ। सिर्फ मट्ठा पीकर रहनेकी बातपर मैं चौंका। मुझे लगा कि केवल मट्ठा पीकर जी सकना असंभव है। चिकित्सकने मेरे मनके इस भावको ताड़ा और थोड़ेसे शब्दोंमें इस तरह प्रेमसे समझाया कि मेरी समझमें यह आ गया कि मट्ठा मेरे लिए भोजन है, मट्ठा मेरे लिए दवा है, मट्ठा मेरे लिए अमृत है। और मैं बहनके यहां जाकर यह सब करने लगा। पहले दिन कोई आध सेर मट्ठा पी सका पर धीरे-धीरे वह भूख, जो बिल्कुल वंद हो गई थी, खुलने लगी और मट्ठेकी मात्रा बढ़ी। चिकित्सा चलते तीन सप्ताह होते-न-होते मैं चार सेर दूधका मट्ठा पीने लगा। मट्ठा मैं पीता और मक्खन मेरी बहनके घरवाले खाते। मैं समझता हूं जितनी कीमतका दूध होता करीब-करीब उतनी कीमतका मक्खन तो निकल ही आता। अतः मेरी बहनको मेरा खर्च जरा भी न अखरा। मेरे खानेका सारा खर्च वे ही बर्दाश्त करती थीं।

मट्ठा अधिक बढ़नेपर मुझे शौच मुश्किलसे होता था। इसे दूर करनेके लिए मुझे मट्ठेके साथ आधा सेर तुरईकी विना नमककी तरकारी वताई गई। इससे भी कब्ज पूरी तरह नहीं गया तो पालकका साग बताया गया। तीन पाव साग मैं खाने लगा। साग वटलीमें उबालता। सागसे निकला पानी पी लेता और साग मठेमें मिलाकर खा लेता।

मुझे अब मेरी तंदुरुस्ती ठीक लगने लगी। शौच दो बार ठीक होने लगा। बदनमें स्फूर्ति आ गई। चलने-फिरनेकी ताकत आ गई। ऐसी दशामें मैं अर्थलाभके लिए यानी भोजनका खर्च निकालनेके लिए खोंचा लगाने लगा। बाजारसे चीनिया बादाम खरीद लाया और चौराहेपर रखकर बेचने लगा। इससे कुछ आर्थिक लाभ तो होता ही, पर सबसे वड़ा फायदा यह हुआ कि मेरी तबियत उसीमें दिनभर लगी रहती।

डेढ़ महीनेकी चिकित्साके वाद मट्ठेकी मात्रा कम की गई और चावल जोड़ा गया। पंद्रह दिनमें मैं दो बारमें चार छटांक चावल, एक सेर पालकका साग और एक सेर दूधका मट्ठा लेने लगा। इस भोजनसे मेरे शरीरपर मांस चढ़ा। मेरी सूखी त्वचापर रंग आया और गालकी हड्डियोंपर चरवी चढ़ गई।

चावल खाते तीन सप्ताह होनेपर रोटी बताई गई। और नमक भी बताया गया। मेरा भोजन इस प्रकार रखा गया।

नाश्ता—दो तोला बेलकी पत्ती आधसेर पानीके साथ पीसकर पीना।

दोपहर और शामको एक-एक पाव आटेकी रोटी, एक पाव दही और तरकारी।

बेलकी पत्ती मुझे इसलिए दी गई कि पेशाबके साथ जलनकी मेरी पुरानी बीमारी इस वक्त उभर आई थी। वह इस प्रयोगसे चली गई।

मेरी चिकित्सा कुल ढाई महीने चली। मेरा वजन इस अवधिमें कुल तेरह सेर बढ़ा और मैं हर दृष्टिसे ठीक हो गया। चिकित्सामें मुझे शक्ति आनेपर टहलना भी बताया गया था

और ठंडे पानीसे नहाना तो आरंभसे ही शुरू करा दिया गया था।

मेरी चिकित्सामें मेरी बहन बहुत मददगार रहीं। यह नहीं कि उन्होंने मेरे भोजन-पानीका इंतजाम किया पर इसलिए कि मुझे चिकित्सकके बताए रास्तेपर चलनेके लिए बराबर प्रोत्साहित करती रहीं। चिकित्सककी पिताकी-सी सहानुभूतिके साथ-साथ यह उन्हींका प्यार और प्रोत्साहन था कि मैं बाजारके बीचमें रहते हुए और चीनिया बादामका खोंचा लगाते हुए भी ठीक परहेज कर सका, और मेरा मुर्दा शरीर प्राणवान हो सका। अब मैं अपना हर काम पहलेकी तरह मौजसे कर पाता हूं।

सारे चिकित्साकालमें मैं एक दिन भी चिकित्सालयमें रहा नहीं, रोज चिकित्सकसे मिला भी नहीं। केवल सप्ताहमें एक बार मिलता। वे मुझे उस दिन कोई दस-पंद्रह मिनटका समय देते पर इतने हीमें अपनी बातोंसे वे मुझमें वह जीवन और आशा भर देते कि मेरा भीत मन खिल उठता। मरनेकी आशंका चली जाती और आगेके सुंदर जीवनका सुखमय दृश्य सामने आ खड़ा होता। मैं मानता हूं कि चिकित्सकके उन शब्दोंने मेरे लिए किसी भी दवा अथवा किसी भी चिकित्सा-विधिसे अधिक काम किया। कुदरती इलाजने तो मुझे मोल ही ले लिया। मैं अपना काम करता हूं और रामनामकी तरह उसके गुण गाता हूं।

—श्रीरामलाल

(३)

मुझे पांच सालसे अपचकी बीमारी थी। खाया हुआ

हजम न होता, पेट भारी रहता, जिसकी वजहसे कुछ काम न कर पाता। मैं खाता-पीता रहता और खाटपर पड़ा रहता। बातोंमें भी तबियत न लगती, न किसी खेल-तमाशेमें। धीरे-

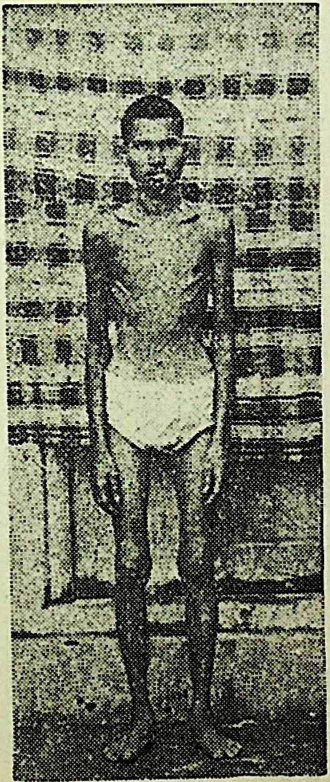

लेखक : चिकित्साके आरंभमें

धीरे अपचके साथ संग्रहणी हुई। पेट चलने लगा—दिनमें कई बार टट्टी जाना पड़ता। दस-बारह टट्टी मामूली बात थी। किसी दिन तो संख्या बीस-पचीसतक पहुंच जाती। बदन

गलने लगा, ठठरी हो गया। रोग मिटानेको एकसे दूसरेके यहां दौड़ने लगा। रोग जितना ही बढ़ा मैंने जल्द-जल्द डाक्टर बदलने शुरू किए। गोरखपुरका कोई डाक्टर-वैद्य न बचा

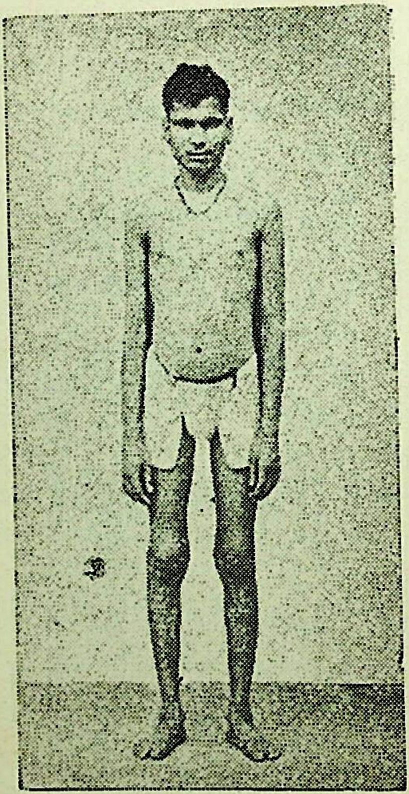

लेखक : स्वस्थ होनेपर

जिससे मैंने दस-पंद्रह दिनों दवा न कराई हो। डाक्टरोंने दवा-की बड़ी-बड़ी शीशियां पिलाईं, सूइयां चुभोईं, वैद्योंने काढ़ा-गोली-चूरन आजमाया। पर सब फजूल।

बाहरी डाक्टर-वैद्योंसे निराश होकर एक मित्रके कहनेसे मैं सहजनवां स्टेशनके पास डुगडुइयां गांवके वैद्यजीके पास गया जो संग्रहणीके इलाजमें मशहूर हैं। उन्होंने सब बातें सुनीं, नाड़ी देखी, पेट टटोला और बात-ग्रहणी बताई। चिकित्सा शुरू हुई। पांच महीने चली। वैद्यजीने, जो कुछ करना था किया और बहुत प्रेमसे किया। यहांतक कि मुझे अपने घरका ही आदमी मानने लगे थे। एक दिन मैंने उनसे पूछा, वैद्यजी ! आप अक्सर उपवास करते रहते हैं यह क्यों? उन्होंने कहा, भाई, जब मुझे भूख नहीं रहती है और पेटमें कोई खराबी नजर आती है तो मेरा एक-दो दिनका उपवास कर लेनेका नियम है। मुझे यह सुनकर आश्चर्य हुआ कि जिन वैद्यजीके पास घड़ों आसव-अरिष्ट और सैकड़ों दवा वह उपवास करते हैं। मैंने उनसे डरते-डरते पूछा, क्या उपवाससे मुझे भी फायदा हो सकता है। बोले, हां तुम्हें लंबा उपवास करना पड़ेगा। उपवास करा तो मैं सकता हूं पर लंबा उपवास तोड़नेकी विधि मैं नहीं जानता, उसके लिये तुम्हें किसी प्राकृतिक चिकित्सककी शरण लेनी होगी। गोरखपुर चले जाओ ठीक होगा। मैंने गोरखपुरके आरोग्य मंदिरका नाम सुन रखा था। हमारे गांवके बाबू हरिलाल अपने पुराने मलेरियेकी चिकित्सा वहांसे कराकर स्वास्थ्य प्राप्त कर चुके थे। मैं उन्हें साथ ले गया और वहां जाकर भर्ती हो गया।

पर वहां मुझे उपवास नहीं, मठा-कल्प कराया गया। दस दिन मुझे दिनमें आठ बार एक-एक पाव मठा दिया गया और यह क्रम एक महीनेतक चला। फिर मठेके साथ किशमिश भी आधी-आधी छटांक सुबह-शाम दोपहरको दी जाती और भूख बढ़नेपर इसकी मात्रा तीन छटांक कर दी गई। दो महीना

बीतनेपर सुबह-शाम मठा और किशमिश मिलती और दोपहर-को दलिया और तरकारी। चिकित्सामें मेरे पेटपर मिट्टीकी पट्टी रखी जाती, शरीरको गीले कपड़ेसे रोज आध घंटेतक रगड़ा जाता और कब्ज रहनेपर एनिमा दिया जाता। जब कभी वायु बढ़ती तो पेटपर सेंक।

चिकित्सालयमें दाखिलेके समय मुझे दो आदमी सहारा देकर उठाते-बैठाते तथा शौच कराते थे। करवट लेनेमें भी कठिनाई थी। वह दूसरेको ही बदलवानी पड़ती। पर चिकित्सा-के प्रभावसे मेरे शरीरमें बल बढ़ा और एक महीने बाद मैं थोड़ा टहलने लगा। तीन महीने बाद मैं वहांसे निकला। उस वक्त मीलभर सवेरे और इतना ही शामको टहलता था। घर आकर मैं वहां बताए नियमोंपर चलता रहा।

तंदुरुस्ती सुधरती गई। आज इलाज कराए मुझे तीन वर्ष हो गए हैं। इस बीच मैं कभी बीमार नहीं पड़ा, आगे पड़ूंगा भी नहीं, ऐसी उम्मीद रखता हूं। क्योंकि मैं जान गया हूं कि बीमार पड़ना-न-पड़ना आदमीके अपने हाथमें है। बीमारी कुदरतके कानून तोड़नेकी सजा है और कुदरतके कानून तोड़ने-की मेरी जरा भी इच्छा नहीं है, क्योंकि अपने किएका काफी फल पा चुका हूं।

—श्रीछकौड़ीप्रसाद

: ११ :

कृमि

विद्याकी उम्र पांच साल है। कई महीने हुए उसके पेटमें कुछ दर्द शुरू हुआ। फिर दो-चार दिन बाद पाखानेके साथ छोटी-छोटी कीड़ियां दिखाई दीं। उनकी ऐसी वृद्धि हुई कि रातको सोते समय बहुतसे कृमि गुदाद्वारपर रेंगते पाए गए। नन्हीं-सी कोमल बालिकाको यों इस भयंकर रोगसे ग्रस्त देखकर बड़ी चिंता हुई। मैं एक अनुभवी एलोपैथ डाक्टरके पास गया। काफी सोच-विचारकर उन्होंने एक दवा दी और हफ्तेभर रोज सुबह, दोपहर, शाम सेवन करनेको कहा। किया, पर कोई लाभ दिखाई न दिया। बड़ी निराशा हुई। एक वैद्यजीसे मिला, सारी कथा कही। उन्होंने धन्वन्तरी-मुद्रा प्रदर्शित करते हुए बड़े गर्वके साथ कुछ गोलियोंके साथ यह आश्वासन दिया कि दस दिनमें इन गोलियोंसे रोग समूल नष्ट हो जायगा। धैर्यसे यह दवा भी दी गई। पर रोग घटा नहीं, कुछ बढ़ा ही।

इसके साथ पिता होनेके नाते मेरी चिंताओंका बढ़ना भी स्वाभाविक था। एक दिन रातको इसी चिंतामें निमग्न था कि मेरा ध्यान एक-ब-एक प्राकृतिक चिकित्साकी ओर गया। उसी समय मैंने निश्चय किया कि अब इस बालिकाको प्रकृतिकी ही गोदमें सौंपूंगा। सबेरा होतें ही आरोग्य-मंदिर गया और वहां उसके श्रद्धेय चिकित्सकसे मिला। उनकी चिकित्सा सुनी और उनके आदेशानुसार काम करनेका निश्चय करके घर लौटा।

अब विद्याको दवा देना बंद करके मैंने उसके पेटकी सफाई, थोड़ा शारीरिक व्यायाम तथा सात्त्विक और नियमित आहारपर जोर देना आरंभ किया। पेटकी सफाईके लिए उसे प्रतिदिन प्रातःकाल नीबूका रस और सेंधा नमक-मिश्रित आध सेर गुनगुने पानीका एनिमा दिया गया। एनिमा देनेके आध घंटा बाद मैं स्वयं उसे खुली हवामें कुछ दूर दौड़ाता और कुछ कसरतें कराता। इसका परिणाम यह हुआ कि उसका पेट मुलायम और हलका होने लगा। जहां तक उसके भोजनका संबंध है–– मैंने उसे दाल देना बिल्कुल बंद कर दिया और यह सोचकर कि शायद दाल देखकर वह दाल खानेका हठ करे घरके सब लोगोंने दाल खाना बंद कर दिया। केवल रोटी और तरकारीके खानेकी ही चिकित्सकने व्यवस्था दी थी। रोटी और तरकारीके अतिरिक्त उसे मूली, प्याज, खीरा, अमरूद, नीबू और अनन्नास भी दिया जाता था। रोटी और तरकारी केवल दो बार दी जाती थी और फिर जब भूख मालूम होती तो अमरूद और अनन्नास आदि देते थे। अमरूद तो जितनी बार जितने वह खा सकती थी दिया जाता था। यहांतक कि वह रातको भी अमरूद खाकर सोती थी। इससे प्रचलित संस्कारोंके अनुसार न तो उसे कभी खांसी हुई न जुकाम। मेरा ख्याल है कि लोग भ्रमसे ऐसा कहते हैं कि रातको अमरूद खानेसे खांसी हो जाती है। मेरी समझसे खांसी और जुकामका मूल कारण है पेटकी खराबी, अपच और कब्ज।

दस दिनकी खान-पानकी व्यवस्थासे विद्या पूर्ण स्वस्थ हो गई।

पाखाना शुद्ध होने लगा। कीड़ियोंका कहीं नाम-निशान भी नहीं रह गया। पेट एकदम हलका और मुलायम हो गया।

यह प्रयोग किए आज चार वर्ष हो गए वह पूर्णतः स्वस्थ है। अब उसका भोजन पूर्ववत् है। अंतर केवल इतना ही है कि मैं उसे रोज कुछ मौसमी फल खिलानेसे नहीं चूकता और ध्यान रखता हूं कि उसे रोज कुछ हरी तरकारियां जरूर मिल जायं।

—श्रीरमणरेतबिहारी त्रिपाठी, एम० ए०

: १२ :

नाड़ी-विकार

उम्र मेरी चौदह सालकी है। यों तो मेरा स्वास्थ्य साधारणतः अच्छा ही था, फिर भी मेरे घरवाले, विशेषकर मेरी मां,

लेखक

मेरे कृशकाय होनेकी शिकायत करती थीं। पर मैंने कभी दुबलेसे मोटे होनेकी कोई दवा नहीं खाई।

मुझे घरसे बनारस पढ़ने भेजा गया। यह सन् १९४६ का साल था। मुझे रोजाना सवारीमें पढ़नेके लिए तीन मील जाना और तीन मील आना पड़ता था। मैं अकेले ही रिक्सेमें

बैठकर पढ़ने जाता और स्कूलसे आते समय भी अकेले आता था। इस मेरी स्कूलयात्रामें मुसलमानी मुहल्ला भी पड़ता था, पर मुझे डर नहीं लगता था। मैंने हमेशा वहांके आदमियोंको अपनी ही तरह आदमी समझा। १६ अगस्त, ४६ के कलकत्तेके हिंदू-मुसलिम-दंगेका प्रभाव काशी नगरीतक फैल गया। यहां भी सांप्रदायिक दंगोंने भीषण रूप ले लिया। हमारा मकान मुसलमानी बस्तीसे घिरा हुआ था। दिनभर लोग कर्फ्यूकी वजहसे चुप रहते, पर रातको हिंदू और मुसलमानोंके "हर हर महादेव" और "अल्लाहो अकबर" के नारे वायुमंडलमें गूंज उठते थे। सुरक्षाकी दृष्टिसे हम सब बच्चों और घरकी स्त्रियोंको हमारे चाचाजीनें हिंदू मुहल्लेमें एक रिश्तेदारके यहां भेज दिया। और स्वयं मकान और सामानकी रक्षाके लिए वहीं रह गए।

दोपहरको एक आध घंटेके सिवा कर्फ्यू नहीं टूटता था। इन दिनों मैं अपने बड़े लोगोंको भी कुछ भयभीत-सा देखता था। कई बार मुझे उन लोगोंके मुंहसे सांप्रदायिक झगड़ोंमें होनेवाले स्त्रियों और बच्चोंके वधकी कहानियां सुननेको मिलीं। अब मैं तुर्की टोपी और लुंगी पहने किसी आदमीको देखनेपर अपने जीवनको अरक्षित समझता और चिंतित हो उठता।

दंगा ठंडा पड़नेपर जब मैं धीरे-धीरे सदाकी भांति स्कूल भेजा जाने लगा तब मैं मुसलमानोंसे बराबर सशंकित रहता। लेकिन अपनी कमजोरीके कारण यह बात मैं बड़ोंको कह नहीं पाता था। लगता था कि इससे यह सावित न हो कि मैं पढ़नेसे भागना चाहता हूं।

धीरे-धीरे गर्मीके दिन आए। मैं इस समय सातवें दर्जेमें पढ़ता था। वार्षिक परीक्षा निकट थी, इसलिए सबका अनुरोध था कि मैं पढ़नेमें खूब मेहनत करूं कि पास हो जाऊं। मैं अपने

दरजेमें कुछ कमजोर था, अतः एक मास्टर साहबसे घरपर पढ़ता था। वे मुझे और मेरे भाई रवींद्रको पढ़ाया करते थे। रवींद्रकी और मेरी लिखने-पढ़नेमें प्रतियोगिता चलती थी। कभी-कभी मास्टर साहब हम दोनोंको भाषण करनेकी कला सिखाया करते थे। एक दिन उन्होंने मेरे भाई रवींद्रको दंगेकी बुराइयोंपर बोलनेको कहा। वे खड़े हुए और उन्होंने बड़ी निर्भीकताके साथ दंगोंके दुष्परिणामोंपर अपने विचार प्रकट किए। फिर मेरी बारी आई। किसी तरह उठ तो गया, पर कुछ समझमें नहीं आ रहा था कि क्या बोलूं। केवल दंगोंकी भयंकरताका दृश्य मेरी आंखोंके सामने नाचने लगा। मैं आगे कुछ न सोच सका और न मेरे मुंहसे बोली निकली। मैं अपनी आंखोंके सामने कुछ धुंधला और पीला-पीला देखने लगा। इसके बाद मैं कैसे मूर्छित हुआ और लोग कितने घबराए यह होशमें आने-पर ही मालूम हुआ। यही मेरी भयकी बीमारीका श्रीगणेश था।

लोगोंने मेरे रोगका कारण गर्मी समझकर मुझे घर, जो नैपालके पहाड़ोंमें है, भेज दिया। सबका खयाल था कि वहां-की जल-वायु मेरी बीमारीको दूर कर देगी। हुआ भी कुछ ऐसा ही, कि वहां मुझे इस तरहकी कोई शिकायत नहीं हुई और मैं स्वस्थ समझा जाने लगा। मैं वहां दो महीने रहा था।

अगस्तमें पढ़नेके लिए मैं फिर बनारस आया। यहां आने-पर एक दिन सड़कपर चलते समय एकाएक कुछ घबराहट-सी मालूम हुई। मैं तुरंत अपनी दादीजीसे, जो मेरे साथ थीं, मुझे किसी सवारीमें घर ले चलनेको कहा—यह मेरी बीमारीका दूसरा बार था। इस बार मैं बिलकुल बेहोश तो नहीं हुआ लेकिन एक दूसरी नई चीज शुरू हो गई। मेरे हृदयकी गति बहुत तीव्र हो उठी जो डाक्टरोंके खयालसे एक खतरेका कारण

थी। मेरे हृदयकी तीव्रता मुश्किलसे पांच-सात मिनट रहती थी। इस समय मुंह कुल पीला-सा हो जाता और मुंहसे कुछ फेन निकलने लगता। डाक्टर बुलाया जाता पर उसके आते-न-आते मेरी हृदयकी गति ठीक हो जाती और वह मुझे भला चंगा देख जाता। कभी यह बीमारी दिनमें एक बार और कभी दो-तीन बार आक्रमण करती। अब सबको मेरी चिंता होने लगी। मैं अकेला बाहर नहीं जा सकता था। वैद्य-हकीमोंकी दवा शुरू हुई। डाक्टर विटामिन बी० की कमी बतलाते थे। उनके परामर्शके अनुसार यह और दूसरी अनेक दवाएं खाईं, लेकिन बीमारी कुछ रोज रुककर फिर आ जाया करती थी। फिर भी कुछ ठीक समझा जाने लगा।

अब मैं स्कूलके छात्रावासमें रहने लगा। एक दिन हिंदीके दरजेमें मास्टर साहब सभी लड़कोंसे पुस्तक-पाठ करवा रहे थे। एक लड़केके बाद मेरी पढ़नेकी बारी पड़ती थी, और वह लड़का पढ़ रहा था कि मुझे कुछ परेशानी अनुभव हुई। हृदयकी गति तेज हो गई और बेहोशी आ गई। अध्यापक महोदय सज्जन पुरुष थे। वे मुझे छात्रावासके मेरे कमरेमें ले गए, वहां जलके प्रयोग-द्वारा होशमें लाए। घरवालोंको जब यह घटना मालूम हुई तो उन्होंने घर बुला लिया और अब फिर मेरी चिकित्सा शुरू हुई। पर गशका रोज आना मामूली बात हो गई। अब मेरी पढ़ाईसे ज्यादा मेरे स्वास्थ्यके विषयमें बाबूजी वगैरहको चिंता होने लगी। पढ़ाई बंद कर देनेका विचार किया जाने लगा।

उन्हीं दिनों मेरे मंझले चाचाजीके कालेजके एक साथी श्रीकाशिराजजी उपाध्याय हमारे घर आया-जाया करते थे। उन्हें मेरी बीमारीका हाल मालूम होनेपर उन्होंने एलोपैथिक चिकित्साद्वारा मेरी बीमारी जानेपर शंका प्रकट की और

प्राकृतिक चिकित्साके अनन्य भक्त होनेके कारण उस चिकित्सा-शास्त्रका अनुसरण करनेकी सलाह दी। घरके लोग डाक्टरोंकी दवाओंसे तंग आ गए थे इसलिए प्राकृतिक चिकित्सा अपनानेकी सलाह हुई। और मेरे मंझले चाचाजी मुझे एक साथीके साथ गोरखपुरके आरोग्य-मंदिरमें ले गए।

यहां यह बता देना ठीक होगा कि मैं इन दिनों रातको अकेले सोनेसे भी डरता था। किसी-न-किसीको मेरी चारपाई-पर मेरे साथ सोना पड़ता। बीच-बीचमें मेरी नींद खुल जाती और मैं डरने लगता। दिनमें कहीं अकेला न जा पाता। कोई मेरे साथ अवश्य होता।

चिकित्सालयमें मेरी चिकित्सामें भोजन-परिवर्तन किया गया। शुद्ध सात्त्विक। सवेरे-शाम कटिनहान। इसके बाद मैं किसीके साथ टहलने निकल जाता। लौटकर स्वस्थ गायोंका आध सेर दूध पीता और साथ दो-चार लाल-लाल टमाटर खाता। सवेरे नंगे बदन कुछ देर धूपमें रहता। पंद्रह दिनके अंदर मुझे लाभ मालूम हुआ। मेरी घबराहट कम हो गई, रातको नींद उचटना बंद हो गया और मैं अकेले सोने लगा। फिर भी अकेले जानेसे डरता था। एक दिन डाक्टर साहबने पूछा, किसका डर मालूम होता है? इसका उत्तर तो मैं कुछ भी न दे सका। इसपर डाक्टर साहबने बड़े प्रेमसे मेरे गालपर चपत लगाकर कहा, "क्यों पगले! जहां भय लगता है वहां भगवान नहीं होते?" और मुस्कराकर कहा, "जाओ, अब मत डरना!"

मैंने डाक्टर साहबको कोई जवाब तो नहीं दिया, पर उनकी बातोंपर गौर करने लगा। मुझे मालूम पड़ा कि हां, डाक्टर साहब तो ठीक कह रहे हैं।

दो दिन बाद डाक्टर साहबने मुझे गांधीजीकी आत्मकथा

पढ़नेको दी। पढ़नेपर लगा कि जिन चीजोंको मैं खोज रहा था वे सब तो इसी पुस्तकमें बंद हैं। मैंने दो बार आत्मकथा पढ़ी। इससे मेरी अकेले रहनेकी हिम्मत बढ़ी और उसे आजमानेके लिए मैं अकेले टहलने जाने लगा। आरोग्य मंदिरके चारों ओर खेत फैले हुए हैं, कुछ बन-से बाग हैं, सुंदर शांत सड़कें हैं। कहीं कभी डर लगता तो सोचता कि डर काहेका और भगवानका निवास तो सब जगह है और मुझमें बल भर आता। कभी-कभी मैं गोरखपुर शहरके कोलाहलमें, जो चिकित्सालयसे एक मील दूर है, अपनी हिम्मत आजमाने जाता। वहां भी मुझे कम भय लगता।

अब मुझे योगासनोंका अभ्यास कराया जाने लगा, जिसमें मुझे आनंद आता। मेरे शरीरमें स्फूर्ति आने लगी। मेरा दृष्टिकोण बदल गया। हर चीज मुझे अधिक आकर्षक लगने लगी। अपने जीवनसे भी अधिक प्यार हो गया। मैं पूर्णतया भयमुक्त हो गया। अब मैं घर चला आया। चलते वक्त स्वास्थ्यगृहकी ममता उमड़ आई। डाक्टर साहबसे अलग होनेको जी नहीं चाहता था पर अलग तो होना ही था। डाक्टर साहबसे बिदा लेनी पड़ी।

यह तीन साल पहलेकी बात है। अब मैं बेसेंट कालेजके दसवें दरजेमें पढ़ता हूं। ठीक खानपान और रोजका प्रातःभ्रमण जारी है। साथमें अपने भाई रवींद्रके साथ दो मील दौड़ता हूं। जिसमें मुझे बहुत आनंद आता है।

मुझे आशा है अब मैं कभी बीमार नहीं पड़ूंगा।

—श्रीदेवकीनन्दन शर्मा

: १३ :

चिंता

मैं अपने विद्यार्थी-जीवनमें शरीरसे बहुत कृश रहता था। ऐसा मालूम होता था कि मानो शरीरमें खून ही न हो। मेरी इस हालतपर मिलने-जुलनेवाले टोक दिया करते थे। इसपर शर्मके मारे मेरा सिर नीचा हो जाया करता था। एक तो शारीरिक कमजोरी, ऊपरसे लज्जा। पाठक! आप सहजमें ही मेरी उस अवस्थाका अंदाज कर सकते हैं। जो अवस्था फूलने-फलनेकी थी उसके बदलेमें मैं मुरझाया जा रहा था। ऐसा कैसे और क्यों था यह बतानेकी यहां जरूरत नहीं मालूम होती। ऐसे दृश्य अक्सर दिखाई देते हैं।

स्वास्थ्य-सुधारके लिए स्वभावतः मुझे ओषधियोंकी ओर दौड़ना पड़ा। तरह-तरहकी दवाएं लेता रहा। कई वर्षोंतक यह सिलसिला चला। पर स्वास्थ्य सुधरनेके बजाय नए-नए रोगोंका आक्रमण होता रहा। शरीर दमा, बवासीर, पेचिश, रक्ताल्पता, कमजोरी आदि रोगोंका घर बन गया। अपनी शक्तिके अनुसार काफी रुपए दवाओंपर खर्च करता रहा पर लाभ कुछ न हुआ। मैं चाहता था कि किसी तरह मेरा कुछ वजन बढ़ जाय और शरीरका दुबलापन थोड़ा हट जाय। कई तरहकी कसरतों और आसनोंका भी सहारा लिया। कसरतसे रोगोंके नए आक्रमणसे तो बचा और कुछ-कुछ तंदुरुस्त भी अपनेको महसूस करने लगा, पर न तो रोगोंकी जड़ कटी

और न वजन बढ़ा। सच पूछिए तो मैं दवासे वजन बढ़नेकी उम्मेद छोड़ चुका था।

संयोगकी बात, आगे चलकर मुझे एक बड़ी आर्थिक चोट पहुंची। यह चोट मेरे स्वाभिमानको भी चोट पहुंचा रही थी। मैं कुछ चिंतामें पड़ा। बचपनसे ही मुझे अध्ययनका थोड़ा शौक था, अतः अध्ययन-मननकी ओर इस विपत्तिकालमें मनको लगानेकी कोशिश करने लगा। गीता, स्वामी रामतीर्थकी रचनाएं आदि अपनी रुचिके अनुसार थोड़ा-थोड़ा पढ़ने लगा। इससे मेरा दिल बहला, चिंताएं पीछे छूट गईं। कहना चाहिए कि मैं शांतिका अनुभव करने लगा। मेरा वजन जो एक मन उन्नीस सेरसे कभी नहीं बढ़ा था, वह बढ़कर एक मन तीस-बत्तीस सेर रहने लगा और दमा, बवासीर, रक्ता-भाव, कमजोरी आदि रोग बिना दवा-दारूके कहां भाग गए इसका पता ही नहीं चला। यह केवल अध्ययन-मननका फल था; क्योंकि इस कालमें मैंने किसी विशेष संयम-नियमका पालन किया हो या कोई विशेष परहेज रखा हो सो बात भी नहीं है।

यह करीब पंद्रह वर्ष पहलेकी बात है। मुझे जितनी बातें याद थीं मैंने लिख दी हैं। इसमें कोई बात छूट जा सकती है, पर बढ़ा-चढ़ाकर लिखनेका प्रयत्न मैंने जरा भी नहीं किया है। मुझे जो शारीरिक लाभ पहुंचा वह तो अबतक स्थायी-सा ही है। मानसिक या आत्मिक लाभ जो मैं पा सका था वह भी कम नहीं था यद्यपि परिस्थितियोंके अनुसार वह घटता-बढ़ता रहता है।

विश्वपूज्य बापूने ठीक ही कहा है कि सब रोगोंकी दवा राम-नाम है। मैंने यह चीज अपने अनुभवमें ठीक पाई। पर

अफसोस हम इससे लाभ नहीं उठाते, और इसीलिए आज संसार शारीरिक और मानसिक रोगोंसे तड़प रहा है।

—श्रीहीरालाल सराफ, एम० एल० ए०

(२)

मैंने बहुतसे आदमियोंको देखा है जिन्होंने शंकाहीको रोग समझकर अपनेको खो दिया है। मैं भी उन्हींमेंसे हूं। फर्क यह है कि मैंने खोकर अपनेको वापस पा लिया है। कैसे ? सो कहता हूं।

जिस समय मैं हाई स्कूल गोड्डा (संथाल परगना) में पढ़ता था, मैं बहुत ही दुबला-पतला था। यहांतक कि कहीं खुली देह खड़ा होता तो कोई मेरी पसलियोंको आसानीसे गिन सकता था। लोग मुझे देखकर कह बैठते, बीमार हो क्या ? मैं बीमार तो नहीं था पर दिन-दिन बीमार होता जा रहा था। होस्टलमें रहता था। होस्टलका खाना-पीना तो सब जानते हैं, दूध-दही तो वहां सपना ही था।

१९४९ के नवंबर मासमें अचानक मुझे जाड़ा देकर बुखार आया। ज्यों-ज्यों रात बीतती गई बुखारकी मात्रा बढ़ती गई। शामसे आधी राततक बुखारकी मात्रा १०५° तक रही। मैं बेहोश था, सुबह डाक्टर आए, मलेरिया निश्चित किया। तीसरे दिन मैं कुछ स्वस्थ हुआ। फिर १५ दिनकी छुट्टी लेकर घर गया, पर वहां अच्छा होनेके बजाय फिरसे सख्त बीमार पड़ा। १५-२० दिनके बाद आराम हुआ और कमजोरी बढ़ती गई।

मेरे गांवके कुछ व्यक्तियोंने मुझे तपेदिकके लक्षण बतलाए।

उस दिनसे तो मैं और भी दुबला होने लगा। शंका डाइनने मेरे दिलमें अपना अटल साम्राज्य स्थापित कर लिया। लोगोंके कहनेपर सोचने लगा कि आखिर मेरे शरीरमें कोई बीमारी नहीं है तो मैं दिन-ब-दिन दुवला तथा कमजोर क्यों होता जा रहा हूं? उस दिनसे शंका वढ़ती ही गई।

बुखार बराबर ९८° तक रहता था। खाना खाता वह पच भी जाता था। पर मनमें चिंता बरावर लगी रहती।

एक अच्छे आदमीके कहनेपर इलाजके लिए पटना गया। वहां एक डाक्टरको दिखाया। उनके स्वास्थ्य-परीक्षा करानेका कारण पूछनेपर मैंने अपने मनका चोर उनके सामने निकाला।

उन्होंने खून और खखारकी जांच की। एक्सरे लिवाया। सव कुछ जांचनेपर उन्होंने अपनी राय दी "आपको न तपेदिक है और न कोई बीमारी, आप केवल शंकाके फेरमें पड़ गए हैं।" फिर कहा, कि "आपके शरीरमें विटामिन बी० की कमी है।" उनकी आज्ञानुसार मैं विटामिन बी० की कई शीशियां खाली कर गया पर कुछ पल्ले न पड़ा। दवाई खानेके पहले मुझमें यह गड़बड़ी थी—भूख नहीं लगती थी, रातमें नींद नहीं आती थी, सोई हुई अवस्थामें मुझे कोई जगा देता तो मेरे हृदयमें जोरोंकी धड़कन होने लगती। मन हमेशा उदास रहा करता था। पढ़नेमें चित्त नहीं लगता था। स्मरण-शक्ति जवाब दे गई थी। जो पढ़ता याद न रहता। और इसके लिए दरजेमें शरमाना पड़ता था। शारीरिक शक्ति घटती ही जा रही थी। शरीरकी नसें सूख गई थीं। समयपर शौच नहीं होता था। मुझे ऐसी आशा थी कि अब मैं स्वस्थ न हो सकूंगा। उसी समय 'आरोग्य' के एक पुराने पाठक कांग्रेस कार्यकर्त्ता श्रीरामसुंदर

रामके समझानेपर आशा और निराशाके बीच प्राकृतिक चिकित्साकी ओर बढ़ा।

सूर्योदयके एक घंटे पहले उठता, मुंह-हाथ धोकर आध सेर पानी पी लेता और टहलनेके लिए नदीके किनारे चला जाता और वहां करीब १५ मिनटतक हल्का व्यायाम करता रहता। फिर टहलनेके लिए निकल जाता और एक डेढ़ मीलका चक्कर लगाकर अपने घर लौट आता। स्नानके बाद थोड़ा मट्ठा पीता और पढ़नेके लिए बैठ जाता। भोजनमें फल और दूधकी मात्रा बढ़ाई। इस तरह करीब एक सालतक किया और मुझमें एक अजीब परिवर्तन हुआ।

चिकित्साके पहले मेरा वजन ८४ पौंड और सीना २८ इंच था लेकिन अब मेरा वजन ९४ पौंड तथा सीना ३४ इंच हो गया। और सब कमजोरियां न जाने कहां चली गईं। अब बिना भोजनके एक बार में १६-१८ मील चल सकता हूं जब पहले भोजन करनेपर भी ४ मील मुश्किलसे चल सकता था।

—श्रीनरोत्तमप्रसाद साहा

: १४ :

टांसिल

मेरे दो पुत्र श्रीमिहिरकुमार और श्रीसमीरकुमारको टांसिल हो गये थे। टांसिल बहुत बड़े थे। इनकी वजहसे बच्चोंको

लेखक

जब तब ज्वर हो आता था। बच्चे दुबले होते जा रहे थे। भोजन उनसे किया नहीं जाता था, टांसिलके दर्दके मारे खा नहीं पाते थे और भूख भी बहुत कम हो गयी थी।

मैं उस समय कलकत्तेमें था। रेलवे कर्मचारी हूं, इसलिए वहां रेलवे अस्पतालमें बच्चोंकी चिकित्सा कराई। तीन-चार महीने चिकित्सा करानेसे लाभ नहीं हुआ। डाक्टरोंकी हिम्मत आपरेशन करनेकी नहीं होती थी, क्योंकि दोनों ही बच्चे बहुत कमजोर थे। इसी समय मेरा तबादला गोरखपुर हो गया। यहां भी बच्चोंको रेलवे अस्पतालमें दिखाया, कई अन्य डाक्टरोंको भी दिखाया। उनसे चिकित्सा भी कराई पर रोग ज्यों-का-त्यों रहा। यहां रेलवेके डाक्टर तो आपरेशन करनेको तैयार हो गये पर कई मित्रोंने मुझे कहा कि टांसिल कटा देनेसे बच्चोंकी बुद्धि कम हो जाती है और कई बार टांसिल सेप्टिक हो जानेसे जान जानेका भी खतरा रहता है अतः दवा ही चली और ढाई वर्ष चली पर बच्चोंके स्वास्थ्यमें कोई सुधार नहीं हुआ।

इसी समय मेरे एक मित्रने स्थानीय आरोग्य-मंदिरमें बच्चोंकी चिकित्सा करानेकी राय दी। उन्होंने प्राकृतिक चिकित्साके संबंधमें भी कुछ बताया और यह भी बताया कि उन्होंने कई रोगियोंकी चिकित्सा वहांसे कराई है और लाभ हुआ है। सबसे बड़ी बात जो उन्होंने बताई वह यह थी कि प्राकृतिक चिकित्सामें नुकसान होनेकी कोई संभावना नहीं है। मैं सब ओरसे थक चुका था। इसलिये प्राकृतिक चिकित्साको आजमानेका निश्चय किया और एक दिन बच्चोंको लेकर उन्हें दिखाने आरोग्य-मंदिर पहुंचा। डाक्टरने बच्चोंको देखा और कहा कि बच्चे अच्छे हो जायंगे पर मुझे विश्वास नहीं हुआ, फिर भी चिकित्सा आजमा लेनेमें क्या नुकसान है सोचकर मैंने दूसरे दिनसे बच्चोंकी चिकित्सा शुरू करवा दी। नित्य बच्चे चिकित्सालय सुबह आठ बजे घरसे जाते और दस बजे वापस आ जाते। मेरा घर चिकित्सालयसे डेढ़ मील दूर है। पांच-सात दिनतक तो मेरी पत्नी

बच्चोंको चिकित्सालय स्वयं लिवा ले गयीं फिर बच्चोंके रास्ता देख लेनेके कारण किसी सहायककी जरूरत नहीं रही। बच्चे स्वयं चिकित्सालय चले जाते। वास्तवमें चिकित्सालयकी चिकित्सा उनके लिए खिलवाड़ थी; क्योंकि न उन्हें वहां चाकूका डर था न कड़वी दवा ही पीनी पड़ती थी। चिकित्सामें बच्चोंके पेड़ूपर मिट्टीकी पट्टी आध घंटे रखी जाती और फिर गलेपर गीला कपड़ा लपेटकर ऊपरसे ऊनी कपड़ा लपेट दिया जाता। यह पट्टी आध घंटे गलेपर लगी रहती और इस समय बच्चे आरामसे लेटे रहते।

बच्चोंके भोजनमें विशेष परिवर्तन किया गया। सुबह फलका नाश्ता बताया गया और दोपहर-शामको रोटी और हरी तरकारियां। तीन-चार बजे भी बच्चे फल खाते। उस समय जाड़ेका दिन था इसलिए फलोंमें अमरूद, गाजर, टमाटर और संतरेकी प्रधानता रहती।

भात खानेवाले बच्चे धीरे-धीरे रोटी रुचिसे खाने लगे। फिर उन्होंने चिकित्सककी इच्छानुसार नमक भी छोड़ दिया। हरी उबली तरकारियां यों ही मीठी लगतीं और लड़के हँस-हँसकर भर-भर कटोरा तरकारी खा जाते। तीन सप्ताहके अंदर लाभ दिखाई देनेपर वे बड़े उत्साहित हुए और अब उनकी अपने भोजनपर श्रद्धा बढ़ गयी। दो महीनेकी इस प्रकारकी चिकित्सासे वे बिलकुल ठीक हो गये।

बच्चोंको भोजन-परिवर्तन करानेके लिये हमें भी अपने भोजनमें सुधार करना पड़ा और अब तो सभीको सादे भोजनसे रुचि हो गयी है। उसका प्रत्यक्ष लाभ यह हुआ है कि हमारे सारे परिवारका स्वास्थ्य इतना उन्नत हो गया है कि जितना मेरे होशमें कभी नहीं हुआ। और सबको एक बड़ा लाभ यह भी हुआ कि किसीको इधर कोई रोग नहीं हुआ। लगता है कि

प्राकृतिक चिकित्सा रोग दूर करनेसे अधिक स्वस्थ रहना सिखा-नेकी कला है।

—श्रीप्रियनाथ भद्र

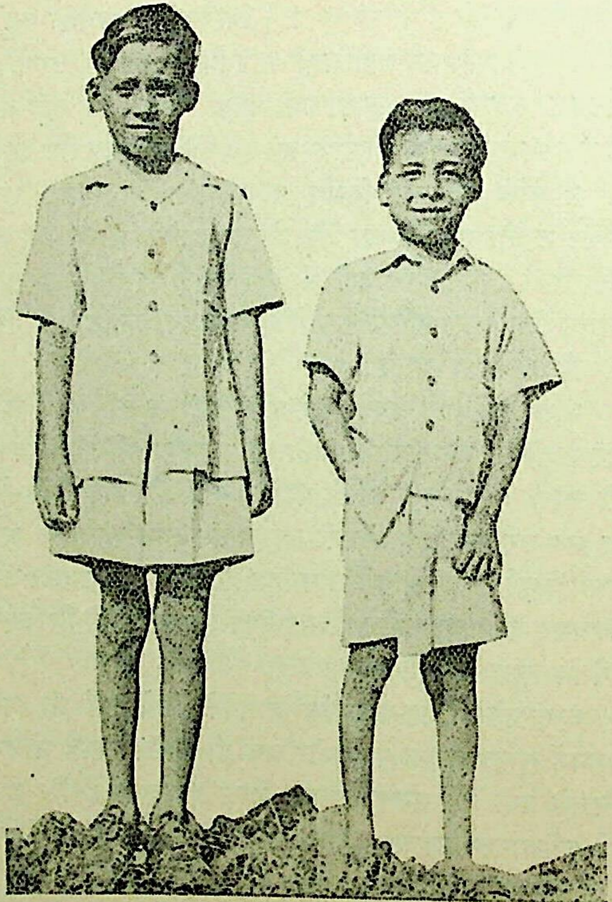

श्रीमिहिरकुमार और श्रीसमीरकुमार

: १५ :

सूजाक

मुझे पहले थोड़ी पाचनकी शिकायत थी। पेटमें मामूली मरोड़ रहती और कब्ज रहता। तीन सालसे यह हाल थे।

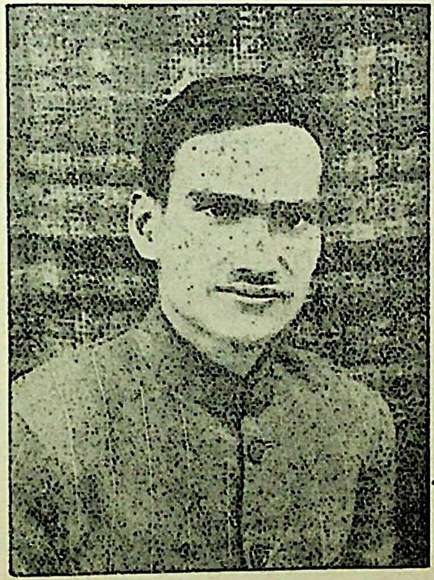

लेखक

स्वप्नदोषके पंजेमें तो मैं छः सालसे फँसा था। रिवाजके मुताबिक डाक्टर-वैद्योंकी शरण गया। चारसे चौंसठ रुपए फीस-तकके डाक्टरोंके दरवाजे खटखटाए। वैद्य जो कलकत्तेमें सबसे

नामी थे उनकी दवा की। पर रोग बिगड़ता ही गया और हालत यहांतक पहुंची कि शरीर हड्डियोंका ढांचामात्र रह गया, चलनेमें चक्कर आने लगा। पाखानेमें आंव आती। कई तरहकी, कभी सफेद, कभी गांठ-सी और मलके साथ कीड़ियां मिली होतीं। कब्जका यह हाल था कि तीन-तीन दिन पाखाना नहीं होता। होनेको हुआ तो पाखानेमें एक घंटा बैठे और जोर लगाए बगैर तो कुछ होता ही नहीं था। पेटमें गुड़गुड़ाहटकी आवाज दिनभर होती रहती। मुंहका स्वाद तीता रहता, छाले पड़ गए थे और जीभका रंग बदरंग हो गया था।

स्वभाव भी खराब हो गया। मन-ही-मन कुढ़ता रहता, लोगोंसे द्वेष रखता, चिड़चिड़ापन हद दरजेका था। नींद आती ही न थी, आती तो बुरे-बुरे स्वप्न देखता। अपनी इस हालतके कारण मैं जीवनसे निराश हो गया था। घरवालोंने भी मेरे जीनेकी आशा छोड़ दी। ऐसी दशामें, आत्म-हत्या यदि कोई आसान चीज होती तो मैं जरूर कर बैठता! वह आसान चीज नहीं है।

कभी-कभी सोचता कहीं मैं पथ्य-परहेजमें तो गलती नहीं कर रहा हूं। डाक्टरों से पूछता, क्या खाऊं? वे कहते पथ्य-परहेजका कोई महत्त्व नहीं है। हमारी दवा पीते जाओ जो तबियतमें आवे वह खाते जाओ!

सूजाक हो गया

मेरी इस दशामें मुझे सूजाक हो गया। महीनेभरतक पेशाबमें जलन रही और सात-आठ दिन लगातार पेशाबके साथ रक्त आता रहा। फिर कभी गाढ़ी सफेद, कभी पीली लसी-सी आती। मूत्रेंद्रियके मुखपर छोटी-छोटी लाल फुंसियां

हो गईं थीं। लसी हर समय चूती रहती। कभी पेशाब साफ न होता। धोती गंदी हो जानेके कारण कई बार बदलनी पड़ती।

स्वभावकी चिड़चिड़ाहट बढ़ गई, घरके हर आदमीपर गुस्सा करने लगा, स्मरण-शक्तिका यह हाल हुआ कि एक घंटे पहले सुनी-सोची बात भूल जाती। किसी बड़ेसे आंख मिलाकर बात करनेकी हिम्मत नहीं होती, डरता इतना कि रातको अकेले पेशाब करने नहीं जा सकता था। जरा-सी कोई तेज आवाज सुनते ही मेरी सांस तेजीसे चलने लगती, लगता अभी कोई भूत-प्रेत आकर मुझे उठा ले जायगा।

और रोगोंकी चिकित्सा मैं खुलकर कर सकता था पर इस घृणित रोगकी चिकित्सा कैसे हो? मैं छिप-छिपकर इस रोगकी दवा खरीदता, बाहर जाता और वहां इस रोगकी चिकित्सामें डाक्टरोंकी जेबें भरता।

घरवालों और मित्रोंसे अपनी दशा छिपानेका मैंने एक विचित्र ढंग निकाला। हमेशा अच्छे-अच्छे कपड़े पहनता, मुंह-पर हमेशा स्नो क्रीम मलता रहता, पर अपना चेहरा आइनेमें देखनेकी मेरी हिम्मत न होती।

मैंने अपने सूजाक होनेकी जो बात यहां लिखी है यह छिपानेकी चीज है? पर अब जब अनेक बुरे कामोंकी गठरी मेरे सिरपर है तो इस एक और बुराईको छिपानेमें क्या रखा है?

खैर, दवा सब कर चुका था, दवाओंसे घृणा हो चुकी थी। मेरे रोगोंसे अधिक घृणास्पद थीं वे मेरे लिए। मेरे रोगोंको बढ़ानेमें मैं उन्हें भी मददगार समझता हूं। और डाक्टरोंको तो और अधिक। किसी संयम-नियमका पाठ उन्होंने मुझे नहीं पढ़ाया और यदि मैंने कभी संयमकी बात की तो उन्होंने

मुझे अपने सोचे रास्तेपर अग्रसर करनेके वजाय उल्टे रास्ते चलनेको ही प्रोत्साहित किया।

मेरी इस दशामें मैंने प्राकृतिक चिकित्साका नाम सुना। चलो नई चिकित्सा है इसे भी आजमा लिया जाय। मैं आरोग्य-मंदिर, गोरखपुर चला गया। वहांकी चिकित्सा मेरे मनोनुकूल निकली। मैं सोचता था कि बिना नियम-संयमके चिकित्सा कैसी ? और यहां मुझे लगा कि संयम-नियमको ही यहां चिकित्साका नाम दिया गया है। मुझे पहले ही दिन लगा कि यह चिकित्सा मुझे लाभ कर सकती है।

जब यहां आया तो मुझे भूख नहीं लगती थी। जब भूख नहीं तो खाना कैसे ? मैंने दो दिनतक उपवास किया, पानी पीता रहा। फिर थोड़ी भूख लगी तो मुझे भोजन मिला। सवेरे फल, दोपहर और शामको रोटी-सब्जी।

चिकित्सामें सवेरे-शाम कटिस्नान, दोपहरको कभी मालिश, कभी धूप-स्नान, कभी गरम-ठंडा कटिस्नान, मुझे मेरी अवस्थाके अनुसार दिया जाता।

दो-तीन दिनमें ही मुझे पेशाब साफ होता दिखाई दिया, भूख कुछ-कुछ लगने लगी, आंवका आना भी कम हुआ और नींद आने लगी। स्वभावमें भी परिवर्तन हुआ ? यहां क्रोध करनेका मौका न आया। इन सबका कारण मैं चिकित्सासे अधिक चिकित्सकके आशादायी, सरल, मृदु एवं प्रफुल्लोत्पादक स्वभावको समझता हूं जिसने मेरे मनपर अधिकार कर लिया।

दुग्धकल्प

एक महीनेकी चिकित्सासे मुझे शक्ति मिली, मैं पांच-चार मील टहलने लगा। रोग सभी कम थे, पर गए नहीं थे। अब

मुझे एक सप्ताहका उपवास कराया गया और फिर मैं सत्ताईस दिन केवल दूध पीकर रहा, दूध चार-पांच सेर रोज पीता। इस गोरसरूपी अमृतसे मेरे सूखे शरीरपर कुछ मांस आया, त्वचाकी कालिमा और सूखापन जाकर उसपर लाली दौड़ी और मुझे अपनेमें उस स्फूर्तिकी प्रतीति हुई जो मेरे लिए स्वप्नकी चीज हो गई थी।

इस प्रयोगसे मेरे रोगोंके सारे लक्षण चले गए। यहां प्राकृतिक चिकित्सासंबंधी पुस्तकें पढ़कर यह तो मैंने समझ लिया था कि इस चिकित्सासे मेरे पेटके समस्त रोग शीघ्र चले जायंगे पर मुझे यह आशा तनिक भी नहीं थी कि मेरा सूजाक भी चला जायगा। असलमें प्रकृति क्या कर सकती है यह वही जानती है। सचमुच वह सब कुछ कर सकती है। उसकी शरण जानेपर, उसकी आराधना सच्चे हृदयसे करनेपर वह मनचाहा वरदान देती है।

मैं एक महीने गोरखपुर आरोग्य-मंदिरमें और ठहरा, अब मेरा भोजन संतुलित था। सबेरे-शाम फल-दूध और दोपहरको रोटी-सब्जी मुझे मिलती। इस समय मुझे आसन सिखाए गए और कुछ व्यायाम। तबियत ठीक होनेके कारण मेरी पढ़नेकी रुचि भी बढ़ गई और आरोग्य-मंदिरके पुस्तकालयसे मैंने प्राकृतिक चिकित्सासंबंधी काफी पुस्तकोंका अध्ययन किया।

कुछ लोगोंको उपवास और केवल दूध पीकर रहनेकी बात बहुत कठिन प्रतीत होती होगी। पर मैं यहां यह भी बताना चाहता हूं कि मैंने तीन महीनेतक नमक भी नहीं खाया। और किसी भी नियमके चलानेमें मुझे कोई कठिनाई नहीं हुई। मन अधिक-से-अधिक करनेको करता था, ऐसा ही वातावरण था। बहुतसे रोगी थे, कोई फलाहारपर था तो कोई उपवास-

पर। उन सबसे प्रेरणा मिलती और सबके साथ बैठकर जब सम्मिलित भोजनालयमें भोजन किया जाता तो जो मिलता वही बहुत स्वादिष्ट लगता। मुझे कोई भी प्रयोग जरा भी न अखरा। तीन महीनेमें मैंने अपनेको नीरोग ही नहीं सशक्त भी पाया, अपने हर कामके योग्य। आज पांच वर्ष बाद घरसे अपनी कहानी लिख रहा हूं। मनमें जरा शंका थी कि कहीं घर जानेपर रोग मुझपर फिर हमला न करे पर अब तो लगता है वे मेरे घरका रास्ता ही भूल गए हैं। शक्तिका मैं सहगामी हो गया हूं, उसकी मुझसे अच्छी पट रही है।

प्राकृतिक चिकित्साके परिचयको मैं अपने जीवनकी सबसे बड़ी घटना मानता हूं। मानता हूं कि उस दिन मेरा पुनर्जन्म हुआ था। पिछला जीवन मैं भूल गया हूं और मैंने अपनी जिंदगी नए सिरेसे शुरू की है जिसमें न परिताप है न पश्चात्ताप। केवल आनंद-ही-आनंद है। इस आनंदका हिस्सा मेरे घरवाले और मेरे मित्र भी पाते हैं। आप भी पाएं अतः यह कहानी लिख दी है।

—श्रीगोविंदराम खेतान

: १६ :

मोटापा

आजसे दो वर्ष पूर्वकी बात है, उस समय मेरी आयु उनतीस

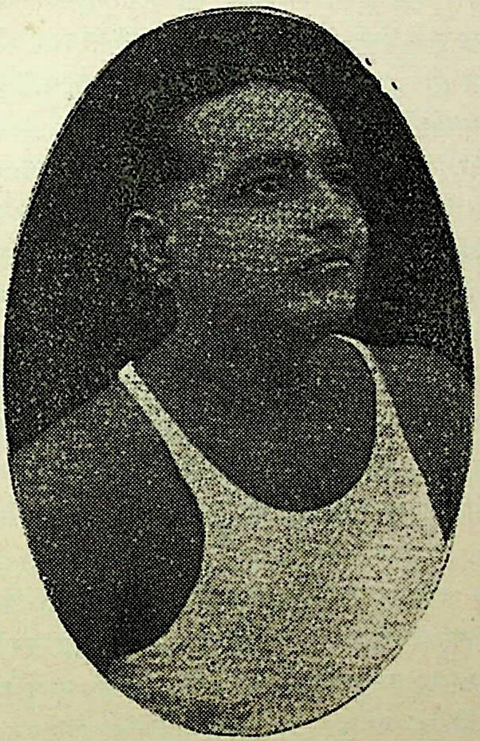

लेखक

वर्षकी थी, शादी हुए पांच वर्ष हो चुके थे। माता-पिताकी एकमात्र संतान होनेके कारण खाने-पीनेमें कोई कमी नहीं थी।

आमदका ख्याल रखते हुए चाहे जो कुछ भी खाया-पीया जा सकता था। उस समय मेरा वजन दो मन आठ सेर, लंबाई पांच फीट छः इंच तथा बदन दोहरा था। इतना वजन होनेपर भी किसी विशेष स्थानपर बेढंगे तौरपर फूला न था।

उस समय मैं सवेरे स्नानके पश्चात् खूब मलाईदार तथा काफी चीनी पड़ा हुआ आध सेर दूध, दोपहरको रोटी-दाल, मुख्यतः उड़दकी दाल खूब गाढ़ी तथा प्रचुर मात्रामें घीसे छौंकी हुई, दो या तीन सब्जी (आलू भी), घीमें सने चावल इत्यादि लेता। इस खानेके साथ दो छटांकके लगभग कोई मिठाई कभी घरकी बनी, कभी बाजारकी लेता। तीसरे पहर प्रातःकालकी भांति एक गिलास दूध, रात्रिमें पराठे और तीन-चार सब्जियां। भूख न होनेके कारण सब्जियोंको बार-बार घीमें भुनवाता, फिर भी स्वाद न आता था। इस खानेके पश्चात् भी दोपहरकी भांति मिठाई लेता और फिर रात्रिमें सोते वक्त दूध आधा सेर पीता। आप विश्वास रखें मुझे कभी बदहज्मी या खट्टी डकारोंका सामना नहीं करना पड़ा था। वर्षमें आठ-नौ महीने वाजीकरण और पौष्टिक दवाएं सेवन करता रहता। पांच वर्षमें लगभग दो मन आसव अरिष्ट तथा पाव-सवा पाव भस्म आदि सेवन कर चुका था।

लोग आपसमें मेरे स्वास्थ्यकी तारीफ करते थे, दोहरा बदन देखकर वे रोबमें आ जाते थे। विशेष तौरपर न कभी बीमार ही पड़ा न दिखावेमें कोई रोग ही था परंतु वास्तविक दशा जो थी सो सुनिए। महीने-दो-महीनेपर विशेषकर गर्मीके मौसममें सिरमें दर्द हो जाता था जो बीस-बाईस घंटे रहता था। कोई भी दवा लगाने या खानेपर उसे दूर करनेमें सफलता प्राप्त नहीं होती थी। इस दर्दको डाक्टर-हकीम वायुका दर्द

कहते थे। मैं इस दर्दसे मुक्ति पानेके लिए कई रसों तथा चिकने पदार्थोंका सेवन करता था। दर्दके समय मुंहमें खुश्की होती थी। वैद्यजी पहलेहीसे कहते थे कि खुश्की है। पर मैं सोचकर असमंजसमें पड़ जाता था कि इतने घी-दूधपर हाथ साफ़ करनेपर भी खुश्की।

मन कभी-कभी घबराता था। क्रोध इतना था कि किसी काममें असफल होनेपर आत्महत्यातकके निर्णयको पहुंच जाता था। सहवासकी इच्छा रोज होती थी, गोया यह एक दैनिक कार्योंमेंसे था, इसके बिना न नींद ही आती थी और न रातभर चैन ही मिलती थी। दांतोंकी हालत यह थी कि मसूड़ोंको दबानेपर खून आता था। जब कि मंजन दिनमें दो बार रोज करता था। मौसमी बीमारियां, खांसी, जुकाम, बुखार, गर्मीमें सारे बदनपर अम्हौरी, बरसातमें दस्त मेरे लिए साधारण बात थी। लेकिन विशेष रूपमें चौंका देनेवाली जो चीज थी बेहद सुस्ती, आलस्य, थोड़ा कार्य कर चुकनेपर आरामकी आवश्यकता, बालोंका तेजीसे सफेद होना, ऐसा लगता था कि अब बूढ़े होनेमें थोड़ी ही देर और है।

जब मैं इस हालतसे गुजर रहा था तो मुझे प्राकृतिक चिकित्सासंबंधी दो-चार लेख पढ़नेको मिले। उसमें प्रतिपादित सिद्धांतोंने प्राकृतिक चिकित्साका अध्ययन करनेको मुझे बाध्य कर दिया। जहांतक बन सका मैंने इस विषयका अध्ययन किया। पढ़कर मुझे लगा कि मैं तो अपने जीवनके साथ खिलवाड़ कर रहा हूं। स्वास्थ्यके संबंधमें बिल्कुल अंधकारमें हूं। मैंने प्राकृतिक चिकित्साके नियमोंपर चलनेकी ठानी। पहला कदम यह उठाया कि मैंने अपने भोजनमें परिवर्तन किया। अब मैं भोजन इस प्रकार लेने लगा।

प्रातः मौसमी फलका नाश्ता, दोपहरको चोकरसमेत आटे-की रोटी, साथमें एक या दो सब्जी और महीनेमें एकआध बार इस भोजनके साथ दालका पानी, शामको कोई एक मौसमी फल, और एक उबालका छः छटांक दूध। दूधमें चीनी नहीं डालता, मीठेके लिए बहुत जी चाहनेपर कभी-कभी दूधमें शहद डाल लेता या साथमें थोड़ी किशमिश ले लेता। इस भोजन-परिवर्तनका फल यह हुआ कि वजन घटना आरंभ हो गया और चार महीनेमें एक मन बीस सेरपर आकर टिक गया। बदनमें चुस्ती आ गई, काम करनेकी सदैव इच्छा बनी रहती, जल्द थकावटका आना दूर हो गया। बालोंके सफेद होनेकी गतिमें कमी आ गई, सिरदर्द तो बिल्कुल निर्मूल हो गया, मनके घबरानेका अवसर ही नहीं आता। क्रोधके स्थानपर सहन-शीलता तथा संतोषकी मात्रा बढ़ गई। सहवासकी इच्छा मेरे वशमें आ गई और हर दृष्टिसे स्वाभाविक हो गई। मसूढ़ोंसे खून आना बंद हो गया। इन सबके लिए अलग-अलग मैंने कुछ नहीं किया, सब अपनी इच्छासे चले गए। मैं तो सिर्फ तमाशबीन था जो देख रहा था कि मेरे शरीरमें वर्षोंसे डेरा डाले मेहमान, अपना डेरा छोड़ रहे हैं। दो वर्षसे मैं इसी कार्य-क्रमपर चल रहा हूं। भोजनमें इस परिवर्तनके साथ मैंने आरंभसे ही सबेरे टहलना शुरू किया था और सबेरे टहलनेके जानेके पहले एक दस मिनटका कटिस्नान भी ले लेता था। कटिस्नान लेना मुझे विशेष सुखद प्रतीत होता। रोगोंसे छुटकारा मिले और फालतू वजनसे छुटकारा मिले मुझे दो ही वर्ष हो रहे हैं। मेरा अपनाया नूतन कार्य-क्रम मेरे लिए स्वाभाविक हो गया है, कितना औषधगुण है प्राकृतिक भोजन और टहलनेमें।

—ओंप्रकाश गर्ग

: १७ :

फाइलेरिया

(१)

२५ वर्षकी अवस्थातक मैं काफी तंदुरुस्त रहा, यदि कोई शिकायत थी तो सिर्फ कब्जकी। कब्जकी वजहसे मुझे कई

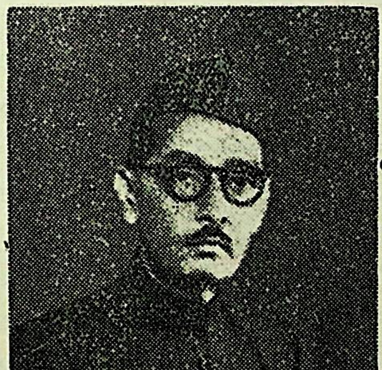

लेखक

तरहकी बीमारियां शुरू हो गईं। पहले तो बहुत कष्टकर पेटदर्द हुआ करता था। इसके बाद गठिया और साथ ही फाइलेरिया और सांजरकी शिकायत शुरू हुई, जिसके फलस्वरूप हाईड्रोसीलकी वृद्धि भी। मैंने कई तरहके बाहरी उपचार

किए। एकादशीके रोज फलाहार भी शुरू किया; परंतु मुझे दौरेकी कमीके बदले उनमें कुछ वृद्धि ही दिखाई दी। हर दसवें-पंद्रहवें दिन सांजरका दौरा आने लगा और इसके साथ मुझे गठिया भी हो जाया करता था। इन सबके लिए मैंने कलकत्तेके नामी डाक्टर डनहम ह्वाइटसे जांच करवाकर उनकी राय ली। उन्होंने आर्सेनी टायफायडकी सुई लेनेकी सलाह दी। उस समयतक मुझे चश्मा लगानेकी कोई आवश्यकता नहीं मालूम होती थी; परंतु आर्सेनी टायफायडकी सुईका पूरा कोर्स लेनेके वाद सांजरका दौरा तो महीनेके अंदर रुक गया, पर मुझे चश्मा लगानेकी आवश्यकता मालूम पड़ने लगी और तवसे अवतक चश्मेकी जरूरत वढ़ती ही जा रही है। फाइलेरिया भी दो सालतक एकदम रुका रहा। उसके वादसे फिर दौरा शुरू हो गया। मैंने दुवारा उक्त डाक्टर साहबकी राय ली तो उन्होंने वतलाया कि एक दूसरा कोर्स आर्सेनी टायफायडका लिया जाय। मैंने उनकी राय न मानकर प्राकृतिक चिकित्साकी शरण ली और सन् १९४४ में प्रायः ११ दिन उपवास और डेढ़ महीने रसाहार करनेके वाद मैं फाइलेरियासे एकदम मुक्त हो गया। अब मुझे कभी भी फाइलेरियाका दौरा नहीं आता। परंतु आंखोंकी रोशनीमें जो एक वार खरावी आई वह अभीतक दूर नहीं हो सकी यद्यपि चश्मेकी शक्ति बढ़ानेकी विशेष आवश्यकता नहीं पड़ रही है पर दृष्टि कमजोर अवश्य हो गई है। यही है नतीजा जहरीली सूइयोंका जिसके पीछे आजकलकी अज्ञान जनता परेशान रहती है।

—श्रीरत्नेश्वरीनंदन सिंह

(२)

आजसे तीन साल पहले मैं रोज बीमार बना रहता। सब तरहके इलाजोंसे निराश हो चुका था। डाक्टरोंने मुझे फाइलेरियाका मर्ज बतलाया था। भयंकर रोग है यह, उसका नाम सुनकर ही छाती दहल गई। सैकड़ों रुपए खूनकी जांच कराने और इंजेक्शनोंमें खर्च किए पर रोगका पूरा निर्णय न हो पाया। फाइलेरिया असाध्य रोगोंकी श्रेणीमें है, यह सुनकर मैंने दवा, इंजेक्शन सब बंद कर दिए। उस समय भी मेरे यहां "आरोग्य" जाता था पर उसे पढ़नेमें कभी मेरी तबियत न लगती थी। इधर उसके एकाध लेख पढ़े तो ख्याल हुआ कि डाक्टरोंने तुम्हें भ्रमजालमें फँसा दिया है।

'आरोग्य' के अनुसार मैंने अपने भोजनमें परिवर्तन किया। उसका नतीजा यह हुआ कि मेरा स्वास्थ्य जो बिल्कुल गिरा हुआ था, किसी काममें मेरा मन न लगता था, मैं सदा चिंतित रहता था, वह अवस्था कतई बदल गई। प्रसन्न रहने लगा, किसी काममें थकावट मालूम न होती, २४-२४ मील दिनभरमें चला। न थकान आई न सुस्ती। मैंने भोजनके सिवा और कुछ न बदला। शुरूमें फलोंपर रहने लगा, फिर थोड़ी-थोड़ी कच्ची सब्जी भी लेने लगा। दिनके भोजनमें अंकुरित गेहूंके साथ घी व पीली शक्कर लेता था। सुबह नाश्तेमें टमाटर तथा रातके भोजनमें दलिएके साथ हरी पत्तीदार कच्ची सब्जी। यह क्रम दो माह चला। फिर गेहूंके अलावा दिनके भोजनमें अंकुरित चना, मटर, मूंग, मसूर, बाजरा (मौसमके मुताबिक) दही व गुड़के साथ—जैसा जिसका मेल है,—आजतक चल रहा है। सुबहका नाश्ता बंद हो गया है। भोजन ९-१० बजेके बीच खूब चबा-चबाकर करता हूं। रातके भोजनमें मौसमके

अनुसार फल तथा कच्ची सब्जी लेता हूं। नमक तथा आगकी मुझे कोई आवश्यकता नहीं पड़ती। दही व घी बिना आगके ही तैयार हो जाता है। गुड़ ही एक वस्तु है जिसमें आगका काम रहता है।

मेरा यह तीन सालका अनुभव बतलाता है कि मनुष्यके लिए प्राकृतिक रहन-सहनके सिवा दूसरा कल्याणकर रास्ता नहीं है। प्रकृतिने जो खाद्य पदार्थ जिस शक्लमें पैदा किए हैं उसी शक्लमें उनमें मानव-जीवनके लिए सब जीवनतत्त्व मौजूद रहते हैं। किसी प्रकारकी कृत्रिमता लानेसे उनमेंके अनेक आवश्यक तत्त्व नष्ट हो जाते हैं। नमक, मीठा सब उन पदार्थोंमें मौजूद रहता है। जैसे अन्य जीवधारियोंके लिए आग गैर जरूरी है वैसे ही मनुष्यके लिए भी उसकी जरूरत नहीं है। जो लोग यह मानते हैं कि कच्चा भोजन पचनेमें देर लगती है, वे अनुभव करके देखें तो उन्हें मालूम होगा कि उनकी इस धारणाका कोई सही कारण नहीं है। कच्चा पचनेमें आसानी रहती है और प्राणीको स्वस्थ रखनेमें तो वह अपनी विशेषता रखता ही है।

—श्रीरासबिहारी सिंह

: १८ :

आमाशयका घाव

१९३६ ई० की बात है साल शुरू हुए बहुत दिन नहीं हुए

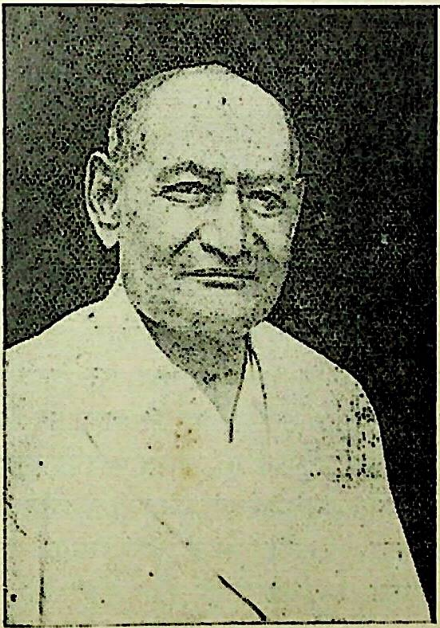

लेखक

थे कि मेरे हृदयके ऊपरकी पसलियोंमें दर्द रहने लगा। वह खाना खानेके दो-तीन घंटे बाद शुरू होता और जबतक फिर कुछ न खा लेता बराबर बना रहता। पर दो-तीन घंटे आराम

रहनेके बाद फिर वही हालत हो जाती। खड़े या बैठे रहनेकी हालतमें दर्द ज्यादा रहता, लेटे रहनेपर कुछ कम। दर्द दिन-दिन बढ़ता गया। यहांतक कि मुझे डाक्टरोंसे सलाह लेनी पड़ी और उन्होंने आमाशयमें घाव हो जानेका निदान किया और पेटका एक्सरे करा लेनेकी सलाह दी, जिससे घाव होने-न-होनेका निश्चय हो जाय। इसपर मैं एक मशहूर और साधन-संपन्न अस्पतालमें गया। वहांके बड़े डाक्टरने खुद सावधानीसे मेरे आमाशयका एक्सरे लिया और उससे उसमें बाईं ओर बड़ा-सा घाव होनेकी बात मालूम हुई। डाक्टरने कहा अभी कुछ साल पहलेतक तो आमाशयका घाव सांघातिक रोग ही माना जाता था, मगर इधर इसकी चिकित्सामें जो उन्नति हुई है उसकी बदौलत बहुतसे रोगी अच्छे हो गए हैं। पथ्य और ओषधिके विषयमें चिकित्सककी व्यवस्थाका अक्षरशः अनुसरण होना बहुत ही जरूरी है। पेट कभी खाली न रहे, थोड़ा-बहुत भोजन उसमें हर वक्त मौजूद रहना चाहिए। वह खाली रहेगा तो आमाशयमें पैदा होनेवाला पाचक रस घावको काटकर और गहरा कर देगा। उन्होंने यह भी कहा कि इस तरहका इलाज अस्पतालमें ही ठीकसे हो सकेगा, घरपर नहीं।

डाक्टरकी बातें सुनकर मैं डर गया और अस्पतालमें भरती कर लेनेको कहा। उन्होंने भरती कर लिया। मुझे आदेश मिला कि अधिक समय लेटा ही रहा करूं और रातके ११ बजेसे सबेरे ५ बजेतकके अलावा बाकी सारे समयमें हर २ या ३ घंटेपर कोई-न-कोई चीज खा-पी लिया करूं और दवा भी लेता रहूं। एक बार मुझे गोश्त दिया जाता, दूसरी बार मछली और सिकी हुई डबल रोटी तथा मक्खन। तीसरी बार दूध और दूधमें पकाया हुआ कोको। कभी-कभी शहद और रोटी

भी दी जाती। एक महीने बाद आमाशयका फिर एक्सरे लिया गया और मालूम हुआ कि घाव न भरा, न घटा, इलाज शुरू होनेके पहले जैसा था वैसा ही अब भी है। मेरा वजन अवश्य करीब एक सेरके बढ़ गया था। अब इस बारेमें सोचनेसे मुझे जान पड़ता है कि मेरा घाव इस कारण और नहीं बढ़ा कि उस वक्त मैं बराबर ही लेटा रहता था और पेटमें सब समय थोड़ा-बहुत खाना भी मौजूद रहता था। वजन थोड़ा-सा बढ़ जानेका संभवतः यही कारण था। जो हो, डाक्टरने कहा, 'चूंकि एक महीनेके इलाजसे आपको कोई लाभ नहीं हुआ इसलिए यहां और रहना बेकार है। घर चले जाइए और जो दवा और खाना अस्पतालमें दिया जाता था वह वहां भी खाते रहिए। अगर ६ महीनेमें भी घाव न भरे तो फिर पेटके आपरेशनके सिवा और कोई उपाय नहीं है।' उन्होंने कबूल किया कि खुद इस इलाजमें भी जानका खतरा हो सकता है। यह भी कहा कि अगर वजन महीनेमें आधा सेर भी बढ़ता रहे तो मुझे समझना चाहिए कि घाव भर रहा है।

मैं बहुत नाउम्मीदीके साथ घर लौटा। किसी और डाक्टरको दिखानेकी सोच ही रहा था कि अचानक प्राकृतिक उपचारकी किसी पुस्तकमें यह पढ़नेकी याद आई कि कुछ दिन केवल दूधपर रहनेसे आमाशयका घाव अच्छा हो जाता है। आखिर उस पुस्तको ढूंढ़ा और पढ़कर निश्चय किया कि कुछ दिन केवल दूध पीकर रहूं। मैंने रोज ३ सेर दूध और २ नारंगियोंका रस लेना शुरू किया। दूध शुद्ध और घरकी गायका होता था। हर दो घंटेपर चायके दो प्याले दूध लेता। सबेरे ७ बजेसे शुरूकर रातके ७ या ८ बजेतक कुल दूध पी डालता। आरंभमें हर बार दूध लेनेके एक घंटे बाद एक चुटकी खानेका

सोडा फांक लेता, जैसा कि अस्पतालमें कराया जाता था, पर पांच-छः दिन बाद ही बंद कर दिया। फल यह हुआ कि १५ दिनमें ही सारा दर्द और तकलीफ जाती रही और वजन लेनेपर देखा कि पूरे पांच पौंड (करीब २।। सेर) बढ़ गया हूं। दुग्ध-कल्प आरंभ होनेके ठीक एक महीने बाद, जब मेरा वजन करीब ५ सेर बढ़ चुका था, मैं अस्पतालवाले डाक्टरके पास गया। वह बड़े अचरजसे मुझे देखने लगे और पूछा, कि क्या आप वही आदमी हैं और आपने क्या किया जो इतने तगड़े हो गये ? मैंने बताया कि मैं एक महीनेसे केवल दूधपर हूं और ३-३।।सेर दूध पीता हूं। उन्होंने कहा, "कोई आदमी केवल दूधपर कैसे रह सकता है ?" मैंने जवाबमें कहा कि "मैं तो एक महीने केवल दूधपर रहा हूं। और सिर्फ जिंदा ही नहीं हूं, बल्कि पहलेसे बहुत अच्छा हूं, और मेरे आमाशयका घाव भी बिलकुल अच्छा हो गया है।" मैं छः हफ्तेतक सिर्फ दूधपर रहा फिर मामूली खुराकपर आ गया।

कुछ महीने बाद उन्हीं डाक्टरने मुझसे कहा कि अस्पतालमें आपका इलाज नये तरीकेपर नहीं हुआ। एक इंजेक्शन (सुई) इस रोगकी अचूक दवा है। अच्छे हो जानेके बाद भी सालमें एक बार या हर दूसरे साल उसे लेते रहना होगा। इससे रोगके दुबारा होनेका डर न होगा। मुझे उस इंजेक्शनके बारेमें और कुछ मालूम नहीं और आमाशयके घावसे पीड़ित प्रत्येक रोगी-को यही सलाह दूंगा कि वह कुछ दिन केवल दूधपर रहकर इस बीमारीको जड़से दूर कर ले।

—(रायबहादुर) श्री पी० एन० घोष

(२)

बचपनसे ही मैं बहुत खिलाड़ी था। कहना चाहिए कि मैंने खिलाड़ीपनकी सीमा पार कर दी थी। उसका फल यह हुआ कि पढ़ना मुझसे नहीं चला। प्रायः मैं स्कूलसे भाग जाता और मछली या चिड़ियाके शिकारके पीछे फिरा करता। ऐसी हालतमें फेल होना स्वाभाविक था। फल यह हुआ कि मेरे घरवालोंने मेरा पढ़ना बंद करा दिया और स्थानीय रेलवेके कारखानेमें भर्ती करा दिया। इस समयतक पड़ोसकी एक लड़कीसे मेरी दोस्ती जम चुकी थी जिससे काम शुरू करते ही मैंने शादी कर ली।

पढ़नेसे ज्यादा मेरा मन काममें लगा। काम भी कुछ दिलचस्प था। इंजन बनाना होता, यानी पुरजे जोड़कर इकट्ठे करने होते, फिट करने होते। जब मैं यह काम करता तो लगता कि मैं एक ताकतको जन्म दे रहा हूं जो सैकड़ों गाड़ी खींचेगी, हजारों यात्रियोंको एक जगहसे दूसरी जगह ले जायगी।

काम करनेसे पैसे हाथमें आने लगे तो मैं सिगरेट पीने लगा और कुछ महीनोंमें ही मैंने अपने पुराने साथी सिगरेट पीनेवालों-को पीछे छोड़ दिया। रोज दस-पंद्रह सिगरेट अपनी पीता और जो दोस्तोंसे मिल जाती वह भी पी डालता। नतीजा यह हुआ कि मेरा हाजमा खराव रहने लगा। कभी पेट फूल जाता, कभी दस्त होने लगता। कभी आंव आने लगता। पेशाबमें जलन मालूम होती। इन सबने मिलकर मेरे जीवनके आनंदको सुखा दिया। मैं जो हमेशा हँसता रहता, मायूस रहने लगा।

ओ० टी० आर० का अपना यहां बहुत अच्छा अस्पताल है। मैं अपनी तकलीफोंसे निजात पानेके लिए बड़ी आशा लेकर वहांके डाक्टर के पास गया। डाक्टरने मेरे पेटको इधर-

उधरसे टटोलकर देखा, जैसे किसी मशीनको उलट-पुलट रहे हों और जब वे ऐसा कर रहे थे तो मुझे लगा कि कोई बेजान चीज मुझे इधर-उधर करनेकी कोशिश कर रही है। दो मिनटमें उन्होंने दवा लिख दी। जिसे मैंने दवाखानेकी खिड़कीपर घंटों खड़े रहकर लिया और पीने लगा। यह क्रम तीन सप्ताह चला। मेरी हालतमें सुधार न होनेपर डाक्टरने सूइयाँ भी लगानी शुरू कर दी थीं। पर न मिक्शचरने काम दिया न सूइयोंने। आखिर मैंने यह समझकर कि मुफ्तकी दवा कोई काम नहीं करती दूसरे डाक्टरके पास गया। पर इससे भी कुछ लाभ न हुआ। फिर होमियो-पैथके पास गया पर उसकी गोलियोंने भी कोई फायदा नहीं पहुंचाया। वैद्यजीकी दवाएं भी मैंने कुछ दिन आजमायीं, पर सब बेकार। अब मैंने दवा बंद कर दी। दवा कुल मिलाकर आठ-नौ महीने की होगी। दवासे काफी निराश हो चुका था उसपरसे विश्वास भी उठ चुका था, फिर क्योंकर दवा गले उतरती।

मेरी हालत धीरे-धीरे खराब होती ही गई। काम करना दूभर हो गया। मैंने छुट्टी ले ली और घरपर बेकार पड़ा रहने लगा। सोचिए उस नौजवानकी मानसिक हालत, जिसकी नौकरी चली गई हो और तंदुरुस्ती बर्बाद हो गई हो।

अब मेरी हालत यह थी कि खाना खाना मुश्किल हो गया था। खाता तो पेट फूल जाता, पेटमें जोरोंसे दर्द होने लगता। कब्ज बराबर बना रहता। ऐसी हालतमें मैं सिर्फ थोड़ा दूध पीकर रहता।

इस वक्त मेरे घरवाले मेरी जांचके लिए मुझे फिर एक डाक्टरके पास ले गए। उन्होंने मेरे पेटका एक्सरे लेनेकी राय दी। इसके लिए मुझे लखनऊ ले जाया गया। एक्सरेसे पता यह चला कि मेरे आमाशयमें घाव हो गए हैं और आंतोंमें सूजन

आ गई है। जांचका यह नतीजा देखकर डाक्टरने निराशा प्रगट की और कहा मेरा बचना मुश्किल है। मुझे मरनेके लिए छोड़ दिया गया।

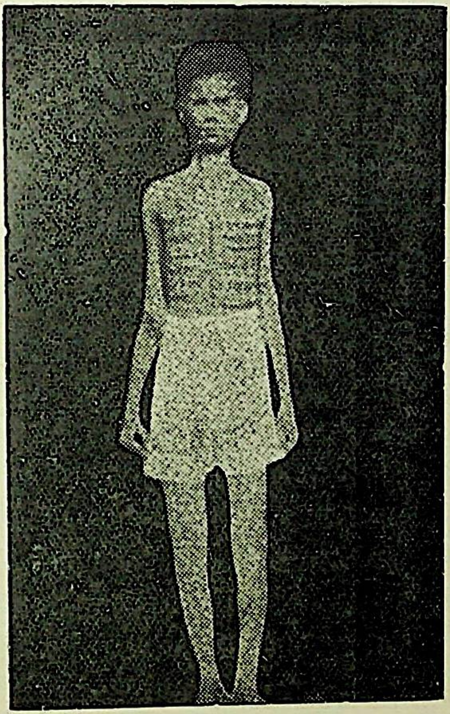

लेखक : चिकित्साके पहले

ऐसी दशामें मेरे एक दोस्तने कुदरती इलाज आजमानेकी राय दी । इस इलाजसे वे खुद स्थानीय आरोग्य-मंदिरसे फायदा उठा चुके थे। वे मुझे वहां ले गए। वहां के चिकित्सकने मेरे रोगका सारा इतिहास बड़े धैर्यके साथ प्रेमसे सुना। सारी

बातें वतानेमें मुझे कोई घंटा भर लगा होगा। इसके बाद उन्होंने मेरी अपने तरीकेपर जांच की और इसके बाद बतलाया कि मेरे स्वस्थ हो जानेमें कोई शक नहीं है। सवाल सिर्फ वक्तका

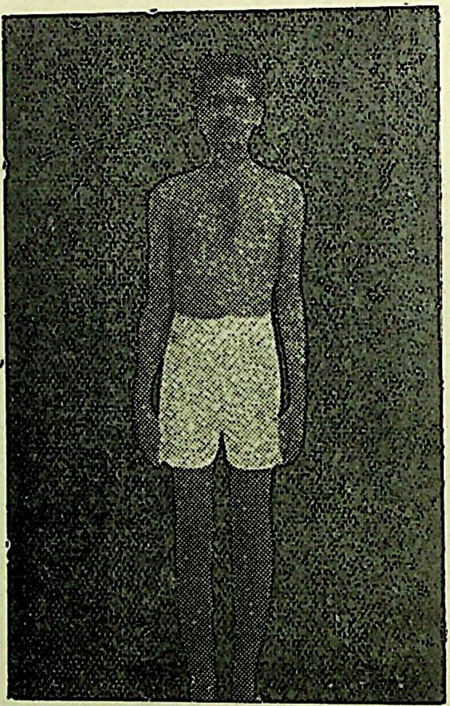

लेखक : चिकित्साके बाद

है—वह चार-छः महीने लगाना होगा। जान मिले तो वक्तकी क्या वात है, मुझे वड़ी खुशी हुई। महीनों वाद मेरे मुंहपर मुस्कराहट आई। फिर चिकित्सकने वतलाया कि भोजनमें ज्यादा संयमसे काम लेना होगा। जव कुछ खाया ही नहीं जाता तो संयमका सवाल ही क्या था। मैं तो उत्सुक था जाननेको कि

मुझे चिकित्सक चिकित्सा क्या बताते हैं। उन्होंने मुझे पहले थोड़ेमें कुदरती इलाजके सिद्धांत समझाए। फिर मेरे लिए नुस्खा लिखा कि दिनभरमें तीन-चार सेर पानी जरूर पीओ, रोज एनिमा लो और दिनभरमें चार बार लौकी, तुरई, परवलका सूप और मौसमीका रस एक-एक पावकी मात्रामें लो। पेड़ू-पर ठंडी मिट्टीकी पट्टी भी रखनेका आदेश हुआ।

चार-पांच दिन बाद पेड़ूपर मिट्टीकी पट्टीके बजाय कपड़े-की गीली पट्टी लपेटकर ऊपरसे ऊनी कपड़ा लपेटनेको कहा गया। यह बंधन दिनमें दो बार मैं आध-आध घंटेके लिए लगाता।

रसाहार और उपरोक्त चिकित्साक्रम एक महीने चला। इतने समयमें पेशाबकी जलन चली गई, पेटका दर्द और फूलना भी कम हो गया और खास फायदा यह हुआ कि पेटमें हर वक्त जो हवा भरी रहती थी, किसी तरह निकलती न थी, वह खुलकर निकलने लगी, जिससे पेट काफी हलका मालूम होने लगा।

अब रसके बदले मुझे थोड़ा-थोड़ा दूध दिया जाने लगा। शुरूमें आध पाव दूध भी पचा सकना कठिन प्रतीत होता। पर धीरे-धीरे एक महीनेमें मैं एक सेर दूध लेने लगा, दूसरे महीनेके अंततक मैं तीन सेर दूध पचाने लगा। अब मुझमें बलका संचार हो रहा था। जहां मैं हर वक्त लेटा रहता था वहां अब थोड़ा चलने-फिरने लगा। तीसरे महीनेके अंततक तो मैं खुद ग्वालेके घर जाकर दूध लाने लगा और तीन-चार मील रोज टहलने लगा।

चौथा महीना शुरू होनेपर दूध कम करा दिया गया और दोपहरको दलिया दिया जाने लगा। मैं सबेरे-शाम दो सेर दूध लेता और दोपहरको दलिया। मेरी भूख बहुत तेज हो गई थी और रोगके सारे लक्षण चले गए थे। अब मुझे दोपहरको रोटी, तरकारी और शामको दलिया, तरकारी बतायी गयी और

सबेरे आध सेर दूध। नमक अब भी बंद था। इसे साधारण भोजन कहना चाहिए। मुझे अच्छे हुए चार महीने हो गए पर मैं अब भी यही भोजन करता हूं। फल मिल जाता है तो खा लेता हूं वरना मेरे लिए इससे सस्ता और बढ़िया खाना सोच सकना भी मुश्किल है। इसी खानेपर मेरा वजन चार महीनेमें पैंतीस पौंड बढ़ा है। जैसी आज मेरी तंदुरुस्ती है वैसी कभी नहीं थी। ११२ पौंडसे मेरा वजन कभी बढ़ा ही नहीं था और न इतनी ताकत ही कभी मालूम होती थी। मैंने कारखानेका काम फिर शुरू कर दिया है जिसे मैं बड़े उत्साहसे और बखूबी कर पाता हूं।

सारी चिकित्सामें मेरे भोजनमें जो खर्च हुआ हो वह तो हुआ पर चिकित्साके नामपर एक पैसा भी खर्च नहीं हुआ। चिकित्सालय मेरे घरसे नजदीक ही है। जब मैं जरूरत समझता आदमी भेजकर आगेका कार्यक्रम लिखवा मंगाता फिर ताकत आनेपर तो मैं खुद वहां जाने लगा। वहांके चिकित्सकके मुस्कराते चेहरेको देखनेको मेरी तबीयत लगी रहती, जिसने मेरे मुर्दा मनमें आशा भरकर और उत्साह दिला-दिलाकर वह कार्यक्रम पूरा करवाया जो आज लोगोंको सुनानेपर असंभव-सा प्रतीत होता है।

सिगरेट मेरी छूट चुकी है और भी बहुत-सी बुरी आदतें, जिन्हें मैं पाले हुए था और जिनका जिक्र न करना ही अच्छा है, मैं पूरी तौरसे छोड़ चुका हूं। अब मैंने चिकित्सकसे आसन करना भी सीख लिया है। सबेरे खूब टहलता हूं, आसन करता हूं, भोजन सादा करता हूं। मेरी जिंदगीमें खुशीने जैसे अपना डेरा डाल दिया है।

—एल्फ्रेड बलवंत विक्टर

: १६ :

मलेरियाका असर

सन् १९४३में मैं व्यापारिक कामसे आसाम गया था। वहां दो महीने रहा। आर्थिक दृष्टिसे फायदा भी हुआ। पर वहांसे मैं एक ऐसा रोग लगा लाया कि जिसका निदान कोई डाक्टर, वैद्य या हकीम न कर सका। और अंतमें वह गया भी बिना निदानके ही।

आसाममें पहले मुझे मलेरियाने पकड़ा। वहांकी यह आम बीमारी है। प्रायः प्रत्येक जानेवालेको भी इसका प्रसाद मिल ही जाता है। मुझे भी मिला। वहां जितनी आम यह बीमारी है उतनी ही साधारण इसकी दवा। मलेरिया दिखाई दिया कि कुनैन शुरू हुई। मैंने भी ली और उस वक्त सात-आठ दिनमें मैं अच्छा हो गया। मलेरिया तो गया पर मुंहसे थूक ज्यादा आने लगा। पांच-सात दिन ही बीते होंगे कि फिर मलेरिया आया। फिर कुनैन चली। मलेरिया गया पर थूक और ज्यादा आने लगा। मैं घर लौट आया।

यात्रा तो सकुशल समाप्त हुई पर घर आते-आते मलेरियाने फिर धर दबाया। कुनैन दी गई और मलेरिया फिर गया। पर थूककी तेजी बंद न हुई। दिनभर आता रहता। सोनेपर ही बंद होता। तीन महीने एक वैद्यकी दवा करनेसे थूकमें थोड़ी-सी कमी आई।

पर एक साल बाद फिर थूकका दौरा शुरू हो गया। उसी दवासे फिर कुछ दबा। लेकिन अब थूकके दौरे जल्दी-

जल्दी आने लगे। दूसरी वार छः महीने बाद आया था फिर तीन महीनेपर आया। धीरे-धीरे वैद्यजीकी दवा बेकार हो गई और थूककी तेजी स्थायी हो गई।

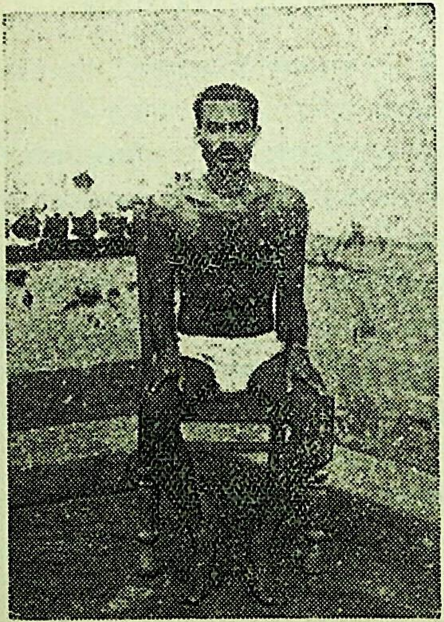

लेखक : रोगकी अवस्थामें

पाठक शायद मेरी मुसीवतका अंदाज नहीं कर सकते। कहीं भी जाना-आना मुश्किल हो गया। बैठता भी, तो थूकता रहता, जिससे मेरे पास लोगोंको आनेमें हिचक होती थी। खाना मुश्किल था खाऊं या थूकूं यही सवाल रहता। किसी तरह दूध या फल-तरकारीका रस झटसे पी लेता और जीता रहता।

जीवन दूभर हो रहा था। मुंहसे कोई एक सेर थूक रोज निकल जाता। ऐसी दशामें मैं गोरखपुरके सबसे बड़े एलोपैथ डाक्टरके पास गया। उसने मुझे देखा और कहा कि मैं इस रोग-का निदान नहीं कर पा रहा हूं। निदानके विना दवा क्या दूं?

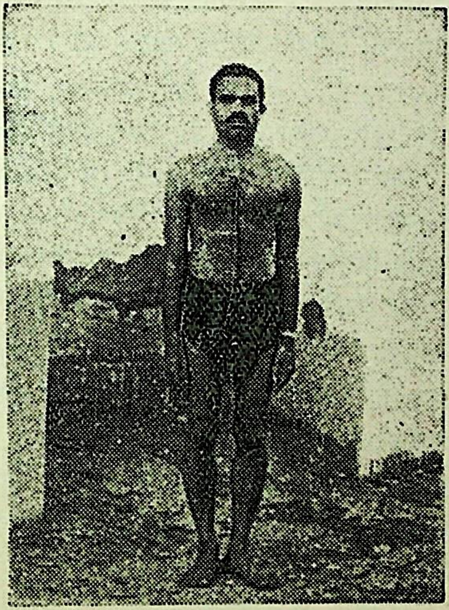

लेखक : स्वस्थ होनेके बाद

इस अवस्थामें मुझे गोरखपुरके आरोग्य-मंदिरका पता चला। वहां जाकर चिकित्सकसे बातें करनेपर समझमें आया कि सब रोग एक हैं और सबकी चिकित्सा एक है। मालूम हुआ कि जो मलेरिया कुनैनके मार्फत गया समझा गया उसका विष शरीरमें रहकर यह उपद्रव कर रहा है। यदि उसे दूर कर दिया जाय तो रोग चला जाय।

बात सही लगी और मैंने प्राकृतिक चिकित्सा शुरू की। मैं जो खाता था अर्थात् दूध-फल, वही शुरूमें चलने दिया गया। पेड़ूनहान, मेहनस्नान, मालिश तथा टहलना और जोड़ दिया गया। फिर मुझे भोजनमें केवल खीरेका रस मिलने लगा। मैं केवल खीरेके रसपर ४३ दिन रहा। खीरेका रस दिनभरमें चार बार सवा-सवा पावकी मात्रामें लेता। यही मेरा भोजन था।

पाठक समझते होंगे कि मैंने इस भोजनसे कमजोर होकर चारपाई पकड़ ली होगी। पर यह बात नहीं थी। खीरेके रससे मुझे अधिक स्फूर्ति प्रतीत होती थी। सबेरे-शाम मैं दो-दो मील टहलता और दिनभर किताबें पढ़ता। हां, इस रसाहारके आखिरी दिनोंमें टहलना कम हो गया था। पर किसी तरहकी और शिकायत नहीं थी। पढ़ना जारी रहा।

अब थूककी बात सुनिए। पहले वह जहां गाढ़ा-गाढ़ा आता था वह धीरे-धीरे पतला हुआ। फिर कुछ समयके लिए किसी वक्त रुका, फिर दो-एक दिनके लिए रुका। अंतमें जब साधारण हुआ तब इसके पहले एक बार खूब बढ़ गया। इतना कि मुझे परेशानी होने लगी; क्योंकि इसके कारण नींद भी चली गई थी।

दुग्ध-कल्प

थूकका आना पूरी तरह सुधरनेपर मुझे दूध दिया जाने लगा। दूध-कल्प छत्तीस दिन चला। पहले दो दिन ! तीन-तीन घंटेपर एक-एक पाव दूध मिला। फिर एक-एक घंटेपर इतना ही दूध लेने लगा। यहांतक कि साढ़े पांच सेर दूध रोज पीने लगा। इच्छा होनेपर पानी भी पीता। दस दिन बाद तो भूख इतनी बढ़ी कि हर घंटे पावके बजाय आध सेर दूध

लेना पड़ता। इस प्रकार मैं रोज पांच सेरसे अधिक दूध पीने लगा। इच्छा होनेपर पानी भी पीता, सबेरे उठकर और रातको सोते वक्त तो पानी जरूर पीता।

दूध बढ़नेपर शरीरपर मांस चढ़ने लगा। सुर्ख तो बदन पहले ही हो गया था। खीरेके रसने त्वचाको सरक्त और कांतिमान वना दिया था। दूधका रसायन पाकर शरीरमें शक्ति दौड़ गई।

अब टहलना शुरू किया। सबेरे कोई छः मील टहलता। दूधके बाद तरकारी, फल, दूध चला। फिर उन्नीस दिनतक दोपहरतक दूध और शामको रोटी-सब्जी ली। अंतमें साधारण भोजनपर आ गया। इस विधिसे मेरा थूक ही नहीं गया शरीर बिल्कुल नया हो गया। पहले दांतोंमें भी दर्द होता था, मसूड़े फूले रहते थे। वह सब कष्ट खत्म हुआ। मैं कह सकता हूं कि मैंने नया शरीर ही नहीं, नया जीवन पाया है।

—श्रीहरिलाल आर्य

: २० :

जीर्ण ज्वर

कुदरती इलाजसे मेरा कोई परिचय नहीं था। न मैं जानता था कि कुदरती इलाज नामका कोई इलाज है, और न किसीको इसे करते-कराते मैंने देखा ही था। कुदरती इलाजके संपर्कमें मैं एकाएक ही आया। जान-समझकर नहीं. इसके गुणोंसे परिचित होकर नहीं, पर इसलिए कि मेरे लिए तंदुरुस्ती पानेकी उम्मीद दिलानेवाला कोई रास्ता रह ही नहीं गया था।

रोग मेरा ज्वर था जो तीन महीनेसे मुझे छोड़ता ही नहीं था। सवेरे १०१° -१०२° डिगरी रहता था और यही शामको बढ़कर १०३° -१०४° डिगरी हो जाता था। दो महीनेसे नींद बिल्कुल नहीं लगती थी, रातभर जागता रहता था। मुंहका स्वाद फीका लगता था, भूख नहीं थी, पर खानेकी इच्छा थोड़ी होती थी। खानेपर भोजनमें स्वाद कुछ भी नहीं आता था। ज्वर जबसे था, डाक्टर-हकीमोंकी दवा हो रही थी, नहाना सबने बंद कर रखा था, अतः जगह-जगह खाज आती थी, फुंसियां हो गई थीं और खुजलाते-खुजलाते जिल्द छिल गई थी।

धीरे-धीरे मेरे जन्मस्थान देवरियाके सभी डाक्टर, वैद्य, हकीमोंकी दवा हो चुकी, किसीसे कोई लाभ नहीं हो रहा था और जीवनके प्रति मेरी चिंता बढ़ती जा रही थी।

यों बचपनसे ही मेरा स्वास्थ्य बहुत बढ़िया नहीं था।

मेरे पैदा होनेके दो दिन बाद ही मेरी माताकी और तीन साल बाद मेरे पिताकी मृत्यु हो गई थी। मेरे दादाजीने जिस

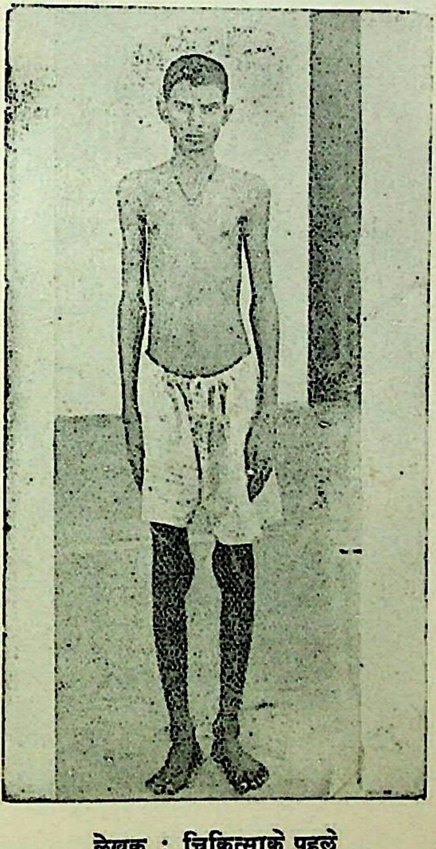

लेखक : चिकित्साके पहले

किसी तरह मुझे पाला था। कोई अमीर घरका भी नहीं हूं। जातिका लुहार, चाकू-छुरी बनाना मेरा काम था, यों मेरे यहां अधिकतर चांदीके बाजूबन्द बनानेका कार्य होता था। काम

करनेके अधिकतर समयमें मैं आधसेर भारी हथौड़ेसे, चांदीको गलाकर बनाए हुए पत्तरोंको बढ़ानेके लिए पीटा करता था

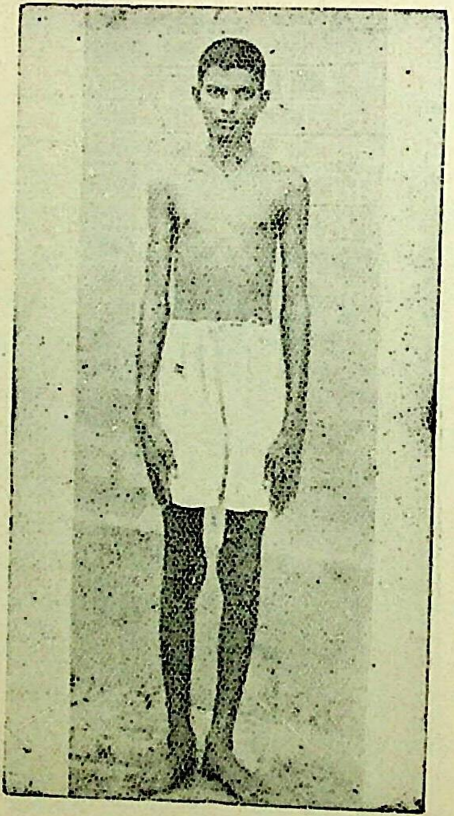

लेखक : चिकित्साके बाद

और बाजूबंद बन जानेके वाद उसको चमकानेके लिए आगमें पकाना भी मेरे सुपुर्द था। कौन जानता था कि बाजूबंद तो चमकते जा रहे हैं, पर मेरी चमक लेते जा रहे हैं।

मेरे रोगको ज्यादातर डाक्टर तो ज्वर ही बताते थे, पर एक हकीमने बताया था कि पेटकी आंतोंमें गिल्टी हो गई है।

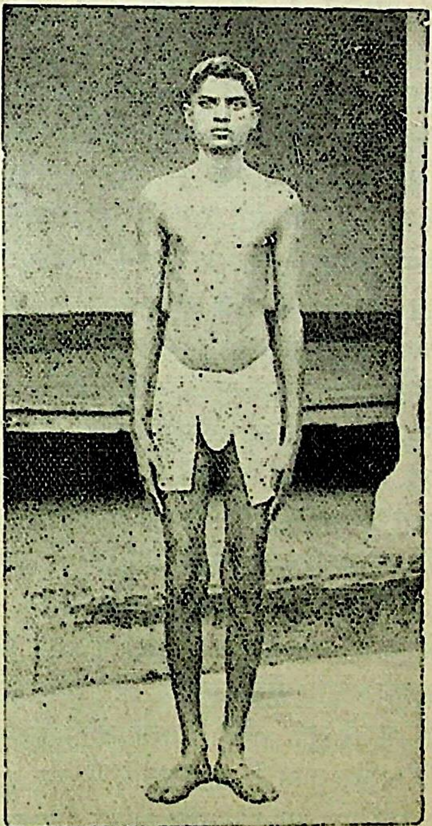

लेखक : चिकित्सा समाप्त होनेके पांच महीने बाद

और जब मुझे देवरियामें कोई अच्छा नहीं कर सका तब मुझे गोरखपुरके एक रिटायर्ड सिविल सर्जनको, जिनको गोरखपुरका सबसे बड़ा डाक्टर समझा जाता था, दिखाया गया। उन्होंने

भी हकीमजीकी तरह पेटकी गिल्टियां ही बताईं पर कहा कि ये गिल्टियां यक्ष्मा (टी० बी०) की हैं और राय जाहिर की कि मेरा बचना मुश्किल है, दवा करना बेकार है ! फिर भी उन्होंने दवा लिखी। और दवा खरीदी भी गई, पर उनके निराशा प्रकट करनेकी वजहसे दवाके इस्तेमाल करनेको मेरा जी नहीं चाहता था। एक दूसरे डाक्टरको दिखाया तो उन्होंने बताया कि बायां फेफड़ा नीचेकी ओर खराब हो गया है । मैंने अपने फुफेरे भाईको, जो मेरे साथ ही मेरे घरपर रहता था, फेफड़ेकी बीमारीसे मरते देखा था। इन डाक्टर साहबके मेरा फेफड़ा खराब वतानेपर, मैं बहुत डरा।

इसी दशामें मुझे गोरखपुरके आरोग्य-मंदिरका पता लगा, जहां मैं चिकित्साके लिए लाया गया। यहांके चिकित्सकने मुझे देखकर बताया कि मेरे फेफड़ेमें कोई खराबी नहीं है और पेटमें भी मामूली खराबी है जो आसानीसे अच्छी हो सकती है। मुझे आशा बंधी और मेरे घरवालोंके घबराए हुए दिलको तसल्ली हुई। मैं यहां रहकर चिकित्सा कराने लगा।

चिकित्सामें सबेरे मेरे पेड़ूपर आध घंटेके लिए गीली मिट्टी रक्खी जाती, दस बजे सारे शरीरको ठंडे पानीके भीगे तौलिएसे अच्छी तरह पोंछा जाता, और शामको चार बजे मेरी छातीके चारों ओर गीले पानीसे भीगा कपड़ा लपेटकर ऊपरसे ऊनी कपड़ा लपेट दिया जाता। मैं खूब खुली जगहमें रक्खा गया, जहां मुझे खूब हवा और प्रकाश मिलता। आरामसे मैं लेटा रहता। डाक्टर-वैद्य तो मुझे दोनों वक्त रोटी-तरकारी और दो बार गरम करके चीनी मिलाया हुआ दूध पिलाते आए थे, पर यहां भोजन हल्का और कम कर दिया गया। एक सप्ताहतक सबेरे मुझे पावभर गायका कच्चा दूध और कोई

फल मिलता। दोपहरको चोकरसमेत आटेकी रोटी और हरी तरकारी। शामको मैं पावभर दूधमें पावभर पानी मिलाकर और उसे गरम करके दो बारमें पीता। दूसरे सप्ताह रोटी बिल्कुल बंद कर दी गई और तीसरे सप्ताह केवल फल दिए गए। चौथे सप्ताह फल-दूध और पांचवें सप्ताह मैं फिर पहले सप्ताहवाले भोजनपर लाया गया, जो बराबर चलता रहा। हां, अब शामको दूधमें पानी नहीं मिलाया जाता था और साथमें कुछ फल भी होते थे।

इस चिकित्साक्रमसे एक सप्ताहमें ही मेरा ज्वर सवेरे और शाम एक-एक डिगरी कम हो गया। मेरा शरीर गीले तौलिएसे पोंछनेके बजाय मुझे अब नहलाया जाने लगा। ठंडे पानीसे मुझे मल-मलकर नहलाया जाता। पहले दिन मेरे शरीरसे मैल इतना उतरा, जैसे मैंने उबटन लगाया हो। नहानेके बाद मेरा शरीर मुझे बड़ा हल्का लगा और कुछ ताजगी मालूम होने लगी। धीरे-धीरे एक महीनेमें मेरा ज्वर चला गया। पेट मेरा दोनों वक्त अपने आप साफ होता था। इसलिए मुझे एनिमा लेनेकी कभी जरूरत नहीं पड़ी।

ज्वर चले जानेपर मैंने थोड़ा-थोड़ा टहलना आरंभ किया। मुझे कभी-कभी मालिश भी दी जाने लगी। कुछ ताकत आनेपर मुझे योगासन सिखाए गए। एक महीने बाद ही चिकित्सालयसे मुझे छुट्टी मिल सकती थी पर मैंने अपनी कमजोरी दूर करनेके लिए यहां एक महीने और ठहरा जिससे मेरा वजन जो चिकित्सा शुरू होनेके पहले सिर्फ अस्सी पौंड था बढ़कर पचासी पौंड हो गया।

दो महीने बाद मैं अपने घर चला आया। घरपर मेरा भोजन था सबेरे दूध और कोई मौसमी फल, दोपहर और शामको

रोटी और तरकारी। मैंने सबेरेका टहलना जारी रखा। कुछ-कुछ काम भी करने लगा। धीरे-धीरे शरीर पुष्ट हो गया। पांच महीने बाद मैंने अपना वजन लिया तो ९८ पौंड निकला। इतना वजन मेरा कभी नहीं हुआ था और न कभी मैंने अपनेको इतना स्वस्थ ही पाया था।

—श्रीत्रिवेणीप्रसाद

: २१ :

मुंहसे खून

मैं तेरह वर्षकी उम्रसे बराबर किसी-न-किसी रोगकी शिकार रही। इस उम्रमें मुझे हर आठवें दिन कै-दस्त आने लगते जो एक अंग्रेजी दवासे बंद होते। सालभरतक यह सिल-सिला रहा होगा कि मुझे जोरोंसे चेचक निकल आई। यह बहुत कष्टके बाद डेढ़ महीनेमें ठीक हुई। इसके बाद दस्तका आना बंद हो गया पर कमजोरी गई नहीं थी कि मुझे मियादी बुखारने आ घेरा। उससे छुट्टी मिली तो आए दिन जुकाम होने लगा, साथ-साथ खांसी भी आती। यह ठीक होती तो पेटमें दर्द उठता। इसी तरह मैं गिरती-पड़ती चली जा रही थी कि मुझे मलेरियाने पकड़ लिया। इसकी बहुत दवा की, बहुत-सी कुनैन पी, पर अंतमें कुनैनके इंजेक्शन लेनेसे इससे पिंड छूटा। मलेरियासे तो छुट्टी मिली पर हलका-सा बुखार रहने लगा। इसी बीच मुझे दूसरा बच्चा पैदा हुआ तो लोगोंने इस ज्वरको प्रसूतिका ज्वर बता दिया। इससे मुक्ति तो मिली नहीं एकाएक मुझे बड़े जोरोंसे सर्दी-जुकाम हो गया और जब उसके वेगमें थूकके साथ खून आने लगा तो मैं और मेरे घरवाले बहुत घबराए। तुरंत अच्छे-अच्छे डाक्टर-वैद्योंको दिखाया गया तो उन्होंने कहा कि इसको तो यक्ष्मा होनेका डर है, इसे पहाड़पर ले जाओ। मेरे पीहरमें कई आदमी यक्ष्मासे मर चुके थे अतः यक्ष्माकी संभावना लोगोंको अधिक लगी और मेरे पतिके एक वैद्य मित्रने तो उन्हें साफ कह दिया कि मुझे यक्ष्मा हो गया है, साधारण

डाक्टर-वैद्योंसे चिकित्सा कराना व्यर्थ है। मेरी चिकित्सा किसी यक्ष्माके चिकित्सालयमें पहाड़पर ही होनी चाहिए। यह सुनकर हमलोग चिंतित अवश्य हुए पर हताश नहीं।

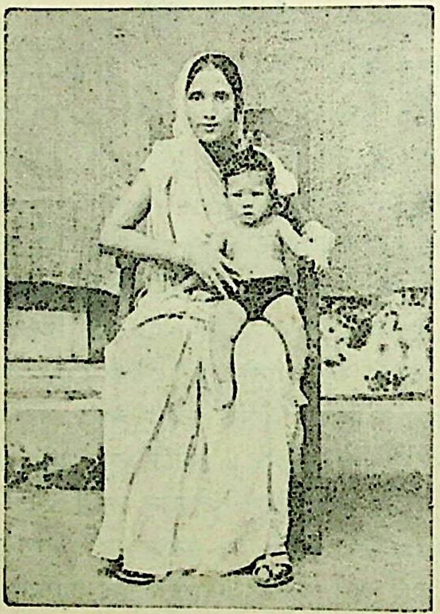

लेखिका

संयोगकी बात हमें गोरखपुरके आरोग्य-मंदिरका पता लगा और हम लोग वहां गए । सोचा गया जरा वहां भी दिखा लिया जाय और वहांकी चिकित्सा भी समझ ली जाय। वहाँके चिकित्सकने मेरी परीक्षा की तो कहा कि न इन्हें यक्ष्मा है और न इन्हें यक्ष्मा हो ही सकता है। यह सुनकर हमलोगोंको बड़ी आशा हुई और मुझे याद है कि मेरी जो सहज मुस्कराहट

मुझसे इधर महीनोंसे रूठ चुकी थी वह वापस लौटी। पर यह भी लगा कि पहलेके अन्य चिकित्सकोंकी तरह ये भी केवल आशा न दिलाते हों पर चिकित्सकने मेरी चिकित्साके प्रति पूरी सावधानी रखनेपर भी मेरे रोगके प्रति जो लापरवाही दिखाई उससे हमें एक सप्ताहमें ही पूरा विश्वास हो गया कि चिकित्सक मेरे रोगको बहुत साधारण समझते हैं और उनकी चिकित्सामें मेरा रोग ऐसा ही साबित भी हुआ।

अब आप यह सुननेको उत्सुक हो रहे होंगे कि मेरी वहांपर क्या चिकित्सा हुई। लीजिए वह भी सुनिए। मुझे वहांपर सबेरे-शामको कटिस्नान कराया जाता और उसके बाद थोड़ा-थोड़ा टहलने-घूमनेको कहा जाता। चिकित्सालयके चारों ओर बहुतसे हरे-भरे खेत हैं और उनके बीच छोटी-छोटी सुंदर पग-डंडियां। मुझे वहां नंगे पैर घूमना और खेतोंके बीचमें जाकर बैठना बहुत अच्छा लगता। मैं घूमती कम, पर मनोरम दृश्योंके बीच अपना बहुत-सा समय बिताती और दिनभर लेटकर आराम करती। चिकित्सालयमें प्राकृतिक चिकित्सा-संबंधी बहुत-सी पुस्तकें भी थीं और पत्र-पत्रिकाएं, उन्हें कभी-कभी पढ़ती। इस प्रकार मेरा दिन बहुत आसानीसे कटता।

भोजनमें मुझे सबेरे खानेको मिलते फल और दोपहर और शामको चोकरसमेत आटेकी रोटी और उबली हुई हरी तरकारियां। पहले मेरा भोजन था दाल-भात और आलूकी तरकारी। एक-दो दिन तो यह नया भोजन थोड़ा अखरा पर फिर मुझे वही भोजन बहुत रुचिकर मालूम होने लगा। इससे मैं इस खोजमें लगी कि आखिर इतनी स्वादिष्ट तरकारियां बनाई कैसे जाती हैं जो आध सेरतक खा लेनेपर भी तृप्ति नहीं

होती। इससे मेरा थोड़ा वक्त चिकित्सालयके रसोईंघरमें भी कटने लगा।

एक सप्ताह इसी भोजनपर बीता होगा कि मुझे तीनों वक्त यानी सुबह, दोपहर और शामको केवल फल दिए जाने लगे। फलोंमें उस समय आते थे पपीते, खरबूजे और खीरे-ककड़ी। यही मुझे मिलते। पहले भोजनसे तो पेट ठीक साफ होने लगा था पर इस भोजनसे शौच अपने आप नहीं होता। इसके लिए एनिमाका प्रयोग होने लगा।

फलाहार करते चार दिन बीते होंगे कि मेरी तबीयत बहुत कुछ सुधर गई। थूकके साथ खून आना चिकित्सा शुरू होनेके तीसरे दिन ही बंद हो गया। जुकाम चला गया, खांसी कम हुई और सबेरेसे ही जो बदन टूटता रहता था उसमें बहुत कमी हुई। पर ग्यारहवें दिन मेरे बदनमें इतने जोरका दर्द पैदा हुआ कि मैं बेचैन हो उठी। यह शाम होते-होते इतना बढ़ा कि बर्दाश्तके बाहर हो गया। इसे दूर करनेके लिए मुझे शरीर-ताप इतने गरम पानीसे भरे आदमकद टबमें आध घंटेतक सुलाया गया। टबमें लेटते ही दर्द कम होने लगा और बीस मिनटके अंदर दर्द बिलकुल चला गया। बदन पोंछकर कपड़े पहनकर मैं सोई तो तुरंत ऐसी नींद आई कि फिर जाकर दस घंटे बाद ही मेरी नींद खुली। नींद खुलनेपर मैं अपनेको सदासे अधिक स्वस्थ पा रही थी।

फलाहार तीन दिन और चला और फिर मुझे फलोंके साथ गायका कच्चा दूध भी मिलने लगा और फिर एक सप्ताह बाद मेरे भोजनका क्रम हुआ सबेरे फल-दूध, दोपहर और शाम-को रोटी-सब्जी। टहलना-घूमना भी जारी रहा। जारी ही नहीं रहा वह बहुत बढ़ गया; क्योंकि अब मुझमें अधिक शक्ति

ही नहीं आ गई थी, मैं अपनेमें भरपूर स्फूर्तिका भी अनुभव कर रही थी। इस प्रकारकी कुल एक महीनेकी चिकित्सामें मेरे रोगके सारे लक्षण एक-एककर चले गए और मेरा शरीर एकदम नया-सा लगने लगा। उत्साह-उमंग जो मुझसे बहुत दिनोंसे विछुड़े हुए थे मुझसे फिर आ मिले। और मैं फिर अपने घर आ गई।

मुझे चिकित्सालयमें रहनेकी वजहसे एक लाभ और हुआ। चिकित्सालयमें जब कभी भात खानेको मिलता था वह होता था पूर्ण चावलोंका। इसके लिए वहां एक काठकी चक्की थी जिसमें धान दले जाते और कन (चावलके ऊपरका लाल पर्त) निकाले बगैर उनसे केवल भूसी अलग की जाती। ये चावल कुछ भारी अवश्य होते पर खानेमें बहुत ही स्वादिष्ट होते और पुष्टिकर बताए जाते। घर आकर ऐसी मैंने कई चक्कियां बनवाई और मजूरिनें रखकर चावल दलाने लगी। वह राशन-का जमाना था। लोगोंको कठिनाईसे चावल मिलते थे। कुछ लोग इन पूर्ण चावलोंको पसंद करने लगे और इनके गुणों-की बात फैली तो इन चावलोंके ग्राहक बहुत बढ़ गए। इस प्रकार लोगोंको स्वास्थ्यप्रद और पूर्ण चावल मिलनेके साथ मुझे यथेष्ट आर्थिक लाभ भी हुआ।

यदि मैं पाठकोंको और खास तौरसे अपनी बहन पाठिकाओं-को एक बात और न बताऊं तो यह कहानी अधूरी ही रह जायगी। मुझे पहले कमरदर्दके साथ मासिककी भी शिकायत थी। वह समयपर न होता, मात्रामें कम होता और बदरंग होता। सभी शिकायतें मेरे मूल रोगके साथ इस प्रकार चली गई जैसे मैंने इन्हींकी चिकित्सा कराई हो।

मैंने रहन-सहन, खान-पानकी जो रीति चिकित्सालयमें

सीखी थी वह मैंने घर आकर भी जारी रखी और मुझे उसका पुरस्कार भी मिला। इस बार मुझे जब बच्चा पैदा हुआ तो कहना चाहिए कि बिना कष्टके हुआ। प्रसवकी पीड़ा नहींके समान सहनी पड़ी। पीड़ा आरंभ होनेके पंद्रह मिनटके अंदर बच्चा पैदा हो गया और यह बच्चा मेरे सभी बच्चोंमें अधिक स्वस्थ है। इसका स्वभाव देखकर लगता है कि विधनाने जब इसे रचा तब इसे रोना सिखाना ही भूल गए। चित्र उतारते समय यह कैमरेसे परिचय प्राप्त करनेमें लगा है अन्यथा आप भी इसका मुस्कराना और हँसना देख पाते।

प्राकृतिक चिकित्सासे जो लाभ मुझे मिला है उसका हिस्सा अब मेरे सारे परिवारको मिल रहा है। सभी अपना भोजन एवं रहन-सहन प्राकृतिक बना रहे हैं। किसी रोगके होनेपर उसके निवारणकी विधि वे मुझसे पूछते हैं और मुझे यह कहते बहुत खुशी होती है कि मेरा सुझाव बहुत बार उनके बहुत काम आता है।

—श्रीमती शकुंतला देवी

: २२ :

हैजा

पुराने रोगोंकी चिकित्सामें प्राकृतिक चिकित्सा निश्चित रूपसे लाभ करती है, इसकी जानकारी प्रायः लोगोंको हो गई है पर तीव्र रोगोंमें अथवा महामारीमें भी प्राकृतिक चिकित्साके सीधे-सादे उपचार बिना खर्चके कितने लाभकर सिद्ध होते हैं यह इस लेख और साथके दो पत्रोंसे जाना जा सकता है।—संपादक

बस्ती जिलेमें पिछले मई-जून महीनेमें हैजा जोरोंसे फैला हुआ था। शहरमें कम पर गांवोंमें खूब प्रकोप था। इसके रोक-थामकी बड़ी कोशिशें हो रही थीं। जिसमें खास बात थी गांववालोंको हैजेसे बचावका (Cholera Preventive) इंजेक्शन लगाना। इस जिलेके डिप्टी कलक्टर श्रीगोपालजी मिश्र विशेष रूपसे दिलचस्पी ले रहे थे। पर उनकी कठिनाई थी कि इंजेक्शन कम मिलते थे, और जब इंजेक्शन मिलते तो उन्हें गांवोंमें पहुंचानेको मोटरमें पेट्रोलकी कमी हो जाती। अतः यह सहायता भी मुश्किल हो रही थी। ऐसे समय दवाके अभावमें हैजेके रोगियोंकी सहायताकी किसी दूसरी विधिकी तलाशमें गोरखपुर जाकर वे वहां आरोग्य-मंदिरके चिकित्सक श्रीविट्ठलदास मोदीसे मिले। प्राकृतिक चिकित्सामें तो किसी दवाकी जरूरत ही नहीं होती। वहां तो मिट्टी, पानी, धूप, हवा ही बड़े साधन हैं। अतः वहांसे जो विधि मिली

उसके लिए पैसे-टकोंकी जरूरत न थी, न दवा बांटनेके लिए डाक्टरकी मोटर चलानेको पेट्रोलकी। एक निहायत सीधा प्रयोग बतलाया गया। रोगीको रोगकी दशामें, गरम पानी, रोगीकी इच्छानुसार ज्यादा-से-ज्यादा पिलाते जाना, और पेड़ूपर मिट्टीकी पट्टी रखे जाना। प्राकृतिक चिकित्सालयसे प्राप्त यह नुस्खा डिप्टी साहबने मुझे बतलाया। वह इसलिए कि मैं जिला पटवारी एसोसिएशनका सभापति हूं, इसे वह मेरे मार्फत पटवारियोंको, और फिर जनताको बतलाना चाहते थे।

मुझे लगा कि इससे अवश्य लाभ होना चाहिए। सिसवा (बुजरुग) ग्राममें मैंने लोगोंको हैजेसे पीड़ित पाया। कै-दस्त चल रहे थे, पेशाब बंद था। कइयोंको ज्वर हो रहा था। मैंने तुरंत खूब साफ मिट्टी मंगवाई, उसे कुटवाकर आटेकी तरह छनवाया और फिर ठंडा पानी मिलाकर गुंधवाया, रोटी-की तरह उसकी पट्टियां बनवाईं, जो आधा इंच मोटी, फुटभर लंबी और छः इंच चौड़ी होती थीं। मिट्टीकी ये ठंडी पट्टियां मैंने रोगियोंके उदर (नाभिके चारों ओर) पर रखवाईं और रोगियोंको गुनगुना पानी पिलवाया। मिट्टीकी एक पट्टी जब शरीरकी गरमीसे पंद्रह-बीस मिनटमें गरम हो जाती तो उसे बदल देता। इस तरह हर रोगीको दिनभरमें कोई छः-सात पट्टियां बदलनी पड़तीं। पट्टी रखते ही रोगीके कै-दस्त धीरे-धीरे कम होते गए और जो पेशाब बंद हो गया था वह मिट्टी रखनेके एकसे सात घंटेके अंदर जारी हो गया। मुझे इस गांवमें सोलह रोगी मिले थे, जिनकी चिकित्सा मैंने आरंभ की थी, उनमेंसे ऐसा कोई न रहा जिसकी चिकित्सा मैंने सुबह जारी की हो और उसे पेशाब शामतक जारी न हो गया हो। दूसरे दिन सभी रोगी चंगे थे। मैंने अच्छे होनेपर सबको गीला भात,

मांड-सा बनाकर थोड़ा खानेको दिया। वहां कोई दूसरी चीज मिलती भी न थी जो इससे ज्यादा हलकी होती। वह धान-प्रधान स्थान है, मैं उन गरीबोंको दूसरी चीज बता भी क्या सकता था ?

मिट्टीकी बदौलत यह हुआ कि जिन सोलह कुटुंबोंमें मृत्युकी आशंका की जा रही थी उन सभी कुटुंबोंपर ये मृत्यु और भयके काले बादल हट गए। मेरा हौसला बढ़ा। मैं डिप्टी साहबकी आज्ञानुसार इमिलियाशुमाली, पचौथ, औंधई आदि ग्रामोंमें गया और वहां भी इसी विधिसे रोगियोंकी चिकित्सा करने लगा। मेरे सामने यह प्रश्न भी न था कि हैजा हुए कितनी देर हुई, रोगीकी हालत क्या है ? मेरे पास तो एक ही नुस्खा था जिसे मुझे हर ऐसे रोगीपर चलाना था जिसे कहा जाय कि हैजा हो गया है। मुझे इन गांवोंमें उन्नीस रोगी और मिले और सभीपर इस नुस्खेने काम किया। मुझे यह कहते खुशी होती है कि कोई भी रोगी मरा नहीं। गोकि रोगियोंको अनेकों दस्त आ चुके थे। कई तो ऐसे थे जिनको दो दर्जनतक दस्त हो चुके थे। इस संख्यासे अधिकके भी थे। ज्वर प्रायः सबको था।

अब मैं इस सस्ती और अद्भुत प्रभाववाली मिट्टीको अनेकों रोगोंपर आजमा रहा हूं। सबमें सफलता मिल रही है।

—श्रीपंचमलाल आर्य

आरोग्य-मंदिर, गोरखपुर (उत्तरप्रदेश)

ता० २७-९-४८

प्रिय महाशय,

श्रीपंचमलालजी आर्य आज यहां आए थे। वे बताते हैं कि उन्होंने आपकी बताई विधिसे मिट्टीका प्रयोग हैजेके

पैंतीस रोगियोंपर किया और वे सब-के-सब स्वस्थ हो गए। उनका कहना है कि आप इस चीजसे परिचित हैं। लिखनेकी कृपा करें।

श्री श्रीगोपाल मिश्र, डिप्टी कलेक्टर
डुमरियागंज, बस्ती

विनीत
विट्ठलदास मोदी
संचालक

× × ×

उत्तर

श्रीरामः शरणं मम

बस्ती
१२-११-४८

प्रिय महाशय,

आपका २७-९-४८ का पत्र कुछ विलंबसे प्राप्त हुआ। कारण वह गल्तीसे दफ्तरके चक्करमें पड़ गया और बाहर रहनेके कारण आफिसकी भंवरसे निकलनेमें देर हो गई।

श्रीपंचमलालजीने आपसे जो कुछ कहा ठीक है। उनका लिखा लेख वापिस कर रहा हूं उसे आप सहर्ष छाप सकते हैं। मैं स्वयं भी श्रीपंचमलालजीकी बातोंकी जांच करने सिसवा गया था और उनके प्रयोगोंकी सफलता संतोषजनक पाई।

मैंने हैजेके रोगीकी चिकित्साके लिए वतलाई आपकी तरकीब सैकड़ों रोगियोंपर बीसियों ग्रामोंमें प्रयोग की और पर्याप्त मात्रामें सफल रहा।

प्राकृतिक जीवनके—मैं इसे चिकित्सा नहीं कहता—मेरे निजी अनुभव भी आश्चर्यजनक हैं, उनपर फिर कभी लिखूंगा। यहां केवल यही कहकर क्षमा-याचना करता हूं कि सोलह माससे मेरे कुटुंबमें डाक्टर या दवा नहीं आई है।

श्रीविट्ठलदास मोदी
आरोग्य-मंदिर
गोरखपुर

आपका अपना ही
श्रीगोपाल मिश्र
डिप्टी कलक्टर, डुमरियागंज, बस्ती
(उत्तरप्रदेश)

: २३ :

अपेंडिसाइटिस

मेरे लिए अपने मानसिक और शारीरिक विकासकी कहानी लिखना कठिन हो रहा है; क्योंकि इसमें एक ओर

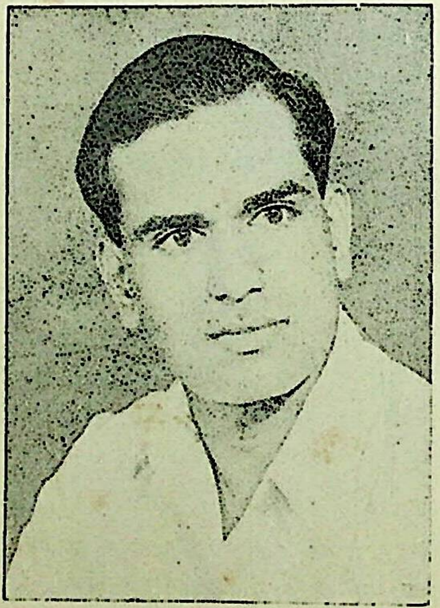

लेखक

तो स्वास्थ्यके संबंधमें वैज्ञानिक दृष्टिकोणकी परमावश्यकता है तथा दूसरी ओर अपनी कमजोरियोंका ब्यौरा परिचितों

एवं अपरिचितोंके सामने रखनेका साहस करना है। सबसे बड़ी समस्या उन प्रचलित रूढ़ियोंका विरोध करना है जिन्हें लोग वैज्ञानिक सत्य मानते हैं और उसके विपरीत कहनेवालेको मूर्ख ठहराते हैं। इस प्रकार मेरे इस नम्र प्रयत्नमें वैज्ञानिक चेतना, मानसिक शक्ति एवं दृढ़संकल्प तीनोंकी ही आवश्यकता है पर यहां तो मेरा उद्देश्य सिर्फ यह प्रकट करना है कि प्राकृतिक चिकित्साने मेरे मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्यमें कैसे क्रांति कर दी और मुझे वैज्ञानिक रूढ़िवादिताकी परेशानियोंसे मुक्त कर दिया।

१९४५ की गर्मियोंमें, जब मैं आई० ए० का छात्र था, मुझे सर्वप्रथम पेट-दर्द हुआ। मैंने विशेष खयाल न किया। परंतु हर दूसरे-तीसरे महीने यह दर्द होने लगा। मेरी आई० ए० की फाइनल परीक्षाके समय इसका भयानक रूप प्रकट हुआ। दर्द करीब चौदह घंटे बना रहा और बहुत करने-धरनेपर भी पूरा आराम होनेमें चौबीस घंटे लग गए। बी० ए० में तो दर्दके साथ ही जब-तब बुखार भी आ जाता। दर्दकी भयानकता बढ़ती गई और अब दर्द महीने-महीने और कभी-कभी तो पंद्रह रोजमें ही आने लगा। इस रोगकी परेशानीमें पढ़ाई-लिखाई कम होने लगी। मुझे आनर्स कोर्सकी पढ़ाई प्रथम वर्षमें ही छोड़ देनी पड़ी तथा बी० ए० के दूसरे वर्षमें ऐसा मालूम पड़ने लगा कि मुझे पढ़ाई ही छोड़ देनी पड़ेगी।

इस बीचके अपनी चिकित्साके मैं एक-दो उदाहरण देना चाहता हूं जिससे पता चलेगा कि कथित वैज्ञानिक चिकित्सक एवं दवावादी आम जनताकी अज्ञानतासे कैसे लाभ उठाते हैं। पटनेमें एक बड़े डाक्टरने मुझे खून, मल, मूत्र आदिकी जांच करानेको कहा। एकने तो छातीका एक्सरे लेनेकी

आज्ञा दी, उनकी दृष्टिमें मुझे टी० बी० की संभावना थी। परंतु सौभाग्यवश मैं इन बखेड़ोंसे बच गया, कारण उसी समय मेरे पेटका दर्द एवं बुखार जोर पकड़ गया। बादको मैंने जाना कि यहां मरीजोंके शोषणके लिए ही थूक, खून, टट्टी जांचनेवाले डाक्टरोंकी श्रृंखलाएं बनी हुई हैं। यहांका हर डाक्टर अपने रोगीको श्रृंखलाके सब डाक्टरोंके यहाँ केवल उन्हें पैसे कमवानेके लिए भेजनेकी चेष्टा करता है। इस पापाचारमय चक्करमें भोले-भाले देहाती और अपनेको अक्लमंद समझनेवाले लोग भी रोगमुक्तिकी मृगतृष्णामें फंसकर सैकड़ों-हजारों खर्च करके भी निराश वापस आते हैं।

बीचमें पटनेके एक प्रमुख होमियोपैथसे भी मेरी भेंट हुई। वह सिर्फ जीर्ण रोगोंका ही इलाज करते हैं। मरीजोंका उनमें (उनकी चिकित्सामें नहीं) अटल विश्वास होना ही उनकी चिकित्साका आधार है। मुझसे पूछा, "आपका मुझमें विश्वास है ?"

जाहिर था कि प्रश्न देहातसे आनेवाले भोले-भाले श्रद्धांध रोगियोंके लिए था और बेवकूफीसे भरा हुआ था। मैंने उनसे अनुरोध किया कि वे मुझसे इलाजसंबंधी बातें करें। इसपर आपका प्रश्न हुआ "रामनाम जपते हैं ?"

"नहीं"

थोड़ी बातें होनेके बाद उन्होंने १५०) पर अच्छा करनेका ठेका किया और आधे पेशगी माँगे। मैंने सिर्फ २५) दिये। न माननेपर १० और दिये। सालभर दवा हुई थी पर मेरी गाड़ी जहाँ थी वहाँ-की-वहां रही। पीछे भले ही हटी हो, पेटके दर्दका जोर बढ़ गया था।

मैं निराश होने लगा। पढाई-लिखाईमें जी नहीं लगता

था। मनोरंजनके लिए सिनेमा, होटलों एवं काफी हाउसोंकी सैरकी मात्रा बढ़ गई। खाने-पीनेका समय भी अनियमित हो गया।

सोनेमें रातके प्रायः एक-दो बजा देता, उठनेमें सुबह नौ-दस। होस्टलके सैकड़ों साथियोंके बीचमें अपनेको अकेला महसूस करता।

मैं प्राकृतिक चिकित्सासे कुछ-कुछ परिचित था, गांधीजीका आरोग्य-साधन तथा कुछ और साहित्य भी पढ़ा था। बीच-बीचमें उसका सहारा लेनेकी सोचता था लेकिन अभी डाक्टरों-परसे मेरा विश्वास पूरी तरह चला नहीं गया था। डाक्टरोंके ठाट-बाट और अस्पतालोंके आडंबर मुझे अपनी ओर खींचते थे।

एक दिन दर्दसे बेहोश हो जानेपर मैंने पटनाके सरकारी अस्पतालकी शरण ली और वहांके या कहिए बिहारके सबसे बड़े सर्जनने मेरे रोगका निदान अपेंडिसाइटिस किया था। और उन्होंने मुझे रोगमुक्त करनेकी कोशिशमें इंजेक्शनोंसे मेरा सारा शरीर भर दिया। फिर भी चार रोज दर्द बना रहा। इस बीच मुझे उन्होंने ७४ इंजेक्शन दिए। और न मालूम कितने दिए जानेपर मैंने सुइयोंकी पीड़ासे परेशान होकर सूई लेनेसे इनकार कर दिया। मेरी बाहें, पुट्ठे और जांघ चलनी हो चुकी थीं। उस पीड़ाके कारण बुखार भी हो गया था। डाक्टरोंने अब अपेंडिक्स (आंत्रपुच्छ) का आपरेशन करना तै किया। आपरेशनके लिए मैं तैयार न था, न मेरे परिवारके लोग ही तैयार थे। मैं गांधीजीके विषयमें पढ़ चुका था कि आंत्रपुच्छके आपरेशनसे उन्हें कुछ भी लाभ नहीं हुआ था, साथ ही मुझे अब दवासे मुक्ति पानी थी। यहांकी पद्धतिसे भी मुझे घृणा हो चुकी थी। डाक्टरोंका रोगियोंमें दिलचस्पी

न होना, उनका अफसराना तरीका, मिथ्याभिमान, हेकड़ी, नर्सोंका दुर्व्यवहार, नौकरोंकी डांट-डपट सभी मुझपर एक अजीब दुष्प्रभाव डाल रहे थे। मुझे ऐसा लग रहा था मानों मैं एक युद्धबंदी हूं और दुश्मनके कारागारमें हूं। मेरी घृणाकी हद तब आ गई कि जब मेरे एक सर्जनसे अपने उपांत्र-प्रदाहका कारण पूछनेपर शरीरशास्त्र और दवाशास्त्रके अध्ययन करनेकी सलाह दी गई—"ऐसे क्या जानोगे, पढ़ो तब जानोगे।"

इस बंदीगृहसे मैंने किसी तरह छुटकारा लिया और प्राकृतिक चिकित्सा करानेका मनसूबा किया। कभी-कभी पटना स्टेशनके बुकस्टालसे 'आरोग्य' लेकर पढ़नेके कारण मैं गोरखपुरके प्राकृतिक चिकित्सालयसे परिचित था। मैं २६ अक्टूबर १९४७को वहां जा पहुंचा और उपचार कराना आरंभ कर दिया।

इलाज कराते हुए मुझे मालूम हुआ कि प्राकृतिक चिकित्सा इलाज नहीं जीवन जीनेका एक तरीका है जिसमें मनुष्य अधिक-से-अधिक अपनी प्राकृतिक आवश्यकताओंको प्राकृतिक तत्त्वोंसे ग्रहण करता है। इन तत्त्वोंसे लाभ पानेके लिए पहले शरीरके अंदरके विजातीय द्रव्योंका—गंदगीका निकलना आवश्यक है, इसका सर्वोत्तम तरीका फलाहार, उपवास, वायु-स्नान, जलस्नान, वाष्पस्नान, धूप-स्नान आदि है। शुद्ध रक्त-मांस, मज्जा और अस्थिके निर्माणके लिए उचित समयपर उचित आहार ग्रहण करना है। आहार-विहारकी भूलोंके कारण विषाक्तता आ जाती है उसे दूर करनेकी इस इलाजमें सुंदर व्यवस्था है।

मैं यहां सिर्फ २७ रोज रहा, जिनमें छः रोज उपवास किया, पांच रोज फलाहारपर बिताये और छः रोज एक वक्त भोजन किया और दो वक्त फलाहार। साथमें जो कटिस्नान और

मेहनस्नान चले उससे भी मुझे काफी लाभ हुआ। उपवासकालमें आश्चर्यजनक बात जो हुई वह दवा तथा इंजेक्शनोंकी प्रतिक्रिया थी। जो रोग इंजेक्शनों एवं दवाओंसे दब गये थे एक-एक करके आये पर एक रोजसे अधिक न ठहरे और एक-एक बार मुंह दिखाकर सदाके लिए बिदा हो गये। "सदा" इसलिए कहा कि आज उन्हें गये पांच वर्ष हो गए हैं।

फलाहार एवं उपवासकालमें एनिमाके प्रयोगसे आंतोंमें पुरानी इकट्ठी गंदगी एकदम साफ हो गई। गंदगीके साथ दो एक छोटे-छोटे पथरीले एवं काले कंकड़से पदार्थ भी बाहर आये। आश्चर्यकी बात यह हुई कि उपचारके बाद मेरे बहुतसे रोग जिनकी ओर मैंने दवा करते समय ध्यान नहीं दिया था, अपने आप चले गए। प्रतिक्रिया उपवासके तीसरे या चौथे दिन शुरू हुई थी। उस दिन मेरा बहुत ही पुराना दोस्त दाद इतना उभड़ आया कि मैं घबरा उठा। डाक्टरने बतलाया कि यह रोगकी प्रतिक्रिया मात्र है, इसके जानेमें सिर्फ दो-तीन दिन लगेंगे। वही हुआ। कानका दर्द वर्षों बाद उठा। पैरोंमें सूजन आ गई जो फाइलेरियाकी बचत थी। दाँतके मसूड़े फूल उठे, क्योंकि मुझे दांतका पुराना रोग था। उपचारके समाप्त होते-होते मेरे किसी भी रोगका पता न था। अपेंडिसाइटिसका कोई भी लक्षण आजतक प्रकट नहीं हुआ।

इस थोड़ें कालमें मैं शरीर-विज्ञानके संबंधमें बहुत काफी जान गया। समुचित आहारका रहस्य एवं छोटे-मोटे मर्जोंका निदान भी समझ गया। सबसे अधिक फायदेकी चीज भोजन तथा उसके पाचन-क्रियाके ज्ञानके विषयमें थी। वास्तवमें ये आज भी मेरी थाती हैं एवं मेरे स्वास्थ्यकी दृढ़ भित्तिरूप हैं। प्राकृतिक चिकित्साके उपचारके साथ ही, वहां अध्ययनकी भी

व्यवस्था थी। सुंदर पुस्तकालय एवं सामयिक व्याख्यान किसी भी आरोग्यार्थीको शरीर-विज्ञान एवं स्वास्थ्यका ज्ञान अपने आप करा देते हैं। यहांका वायुमंडल भी व्यक्तिके शारीरिक और मानसिक विकासमें पर्याप्त सहायता पहुंचाता है। यहांके अनभवोंसे मैं पूर्णतया समझ गया कि भारतीय स्वास्थ्यके स्तरको ऊंचा उठानेके लिए प्राकृतिक जीवनका प्रचार आवश्यक है। दवा या इलाजका स्थान गौण होना चाहिए, प्रमुख स्थान तो स्वस्थ जीवनकी आवश्यकताओंका ज्ञान कराना है जो सिर्फ इसी प्राकृतिक चिकित्साद्वारा संभव है।

वहांसे मैं पूरा नीरोग वापस लौटा। मेरे अनुभवोंसे मेरे पिताजीको, जो दमेसे परेशान थे, बहुत ही लाभ हुआ। स्मरणीय बात यह हुई कि हमारे एक चचेरे भाई, जिनको डाक्टर तथा वैद्योंने जीवनसे निराश कर दिया था, मेरे अनुभवोंसे लाभ उठाकर ५२ वर्षकी अवस्थामें फिर पूर्ण स्वस्थ हो गये तथा अब १५-२० मील आसानीसे एक दिनमें चल लेते हैं। मेरी शारीरिक उन्नतिके साथ-साथ मेरी स्मरणशक्तिकी सभी शिकायत दूर हो गईं। अब भी जब मैं प्राकृतिक चिकित्सा करानेके पूर्वके अपने चित्रको देखता हूं तो घबरा उठता हूं। वह मैं पाठकोंको दिखानेका साहस नहीं कर पा रहा हूं। वास्तवमें प्राकृतिक चिकित्सा मेरे शारीरिक एवं मानसिक उत्थानका क्रांतिदूत है जिसने अपना अमर संदेश मुझे सुनाया।

—प्रो० केशवप्रसादसिंह एम० ए० 'विशारद'

: २४ :

गठिया

१९४६ के अप्रैलकी बात है। अचानक हाथकी कलाईके जोड़में कुछ मामूली दर्द हुआ। चार-पांच रोज उस दर्दको उसी तरह लिए फिरा। मुझे क्या मालूम था कि यह दर्द मुझे खाट पकड़ा देगा। १३ अप्रैलके सबेरे सारा शरीर दर्दसे आक्रांत था और मैं उसकी असह्य पीड़ासे कराह रहा था। डाक्टर बुलाया। उन्होंने आते ही मेरी नाड़ी देखी, मेरे जोड़ोंका निरीक्षण किया। थर्मामीटरसे मेरा तापमान भी लिया, जो १००° था। उन्होंने मेरा रोग 'रिउमैटिक फीवर' अर्थात् वात-ज्वर कायम किया। उन्होंने अस्पतालसे एक सफेद मिक्श्चर, लेपके लिए मरहम और किसी सफेद बुकनीकी पुड़िया मेरे आदमीके हाथ भेजी। सुई लगानेके लिए भी कहला भेजा और कांचकी पिचकारी, स्प्रिटकी एक छोटी शीशी और एक चारों तरफसे बंद सफेद दवाकी शीशी, जिसके ऊपर सोडियम साइलिस लिखा हुआ था, लेकर आ पधारे। मेरे मोटे होनेकी वजहसे उन्हें सुई लगानेकी कोई नस नहीं मिली। उन्होंने मेरे शरीरपर कई जगह सुई गड़ाई। डाक्टर बड़े सज्जन व्यक्ति होनेके नाते मुझे धीरज देते रहे। अंतमें उन्होंने अपनी इच्छित नस खोज ली।

सुई दो महीने लगती रही। डाक्टरने काफी दिलचस्पीसे मेरा इलाज किया। काफी अच्छी दवाइयां दीं। इलाज करनेमें

उन्होंने कुछ भी उठा न रखा। लेकिन फायदा सिर्फ इतना ही होता कि सुई लगानेके आध घंटेके बाद कुछ आराम मिलता जो छः-सात घंटेंतक बना रहता। वे सवेरे सुई लगाते, शामतक उसका असर खतम हो जाता। फिर रात कटनी मुश्किल हो जाती। नींद तो मेरी चली ही गई थी। पाखाना-पेशाब भी खाटमें ही करता। दर्दके कारण मैं स्वयं हिल-डुल न सकता था। डाक्टरने भी हिलने-डुलनेकी मुमानियत कर दी थी। साथ एक बड़ा भारी डर भी बैठा दिया था कि यदि थोड़ा भी हिलोगे तो दिल हमेशाके लिए खराब हो जाएगा। और बताया कि दिल ठीक करनेके लिए दुनियाके किसी चिकित्साशास्त्रमें कोई उपाय नहीं है। इन दो महीनोंमें मेरे शरीरका वजन २२० पौंडसे घटकर सिर्फ १५६ पौंड रह गया था।

जब घरवालोंको डाक्टरके इलाजसे संतोष न हुआ तो उन्होंने वैद्यको आमंत्रित किया। वैद्य भी डेढ़ महीनेतक अपनी गोलियां, क्वाथ और रस वगैरह देते रहे। उनकी भी न चलनेपर मेरे घरवालोंका यह हाल हुआ कि जो भी आता और उनको जो उपचार बतलाता वह मेरे ऊपर आजमाते। परंतु चार महीने बाद मेरा दर्द अपने आप जाता रहा और मैंने फिर एक बार दर्द न होनेके सुखका अनुभव किया।

इसके बाद छः महीने मुश्किलसे बीते होंगे कि फिर गठियाने दर्शन दिए। इस दफा वैद्यजीकी शरणमें पहले ही चला गया; क्योंकि पिछली दफा जब मैं ठीक हुआ था उस वक्त इनका ही इलाज चल रहा था। इससे घरवालोंको तथा मुझे उनमें पूरा विश्वास हो गया था। एक महीनेतक जहरकी घूटें पीते-पीते ठीक हुआ। इस दफा, ठीक होनेके बाद भी दवा लेता रहा।

फिर भी जड़ न गई। दो महीने बाद तीसरी बार मुझपर

गठियाका आक्रमण हुआ। इस बार बहुत निराशा हुई। सबको कहीं बाहर जाकर इलाज करानेकी जंची। लेकिन दर्दकी हालतमें जाना भी तो बड़ा मुश्किल था। इसलिए बीस दिन बाद जब दर्दसे पिंड छूटा तो इसे निर्मूल करनेके किसी इलाजकी खोजमें जयपुर गया।

जयपुरमें लेडी विलिंग्डन हास्पिटल उन दिनोंमें काफी नाम कमा रहा था। डाक्टर आर० ई० हेलिस वहांके प्रधान चिकित्सक थे। वे एक जर्मन थे, बड़े हँसमुख और नेक, कुछ हिंदी बोलना भी जानते थे। कई शब्दोंका उच्चारण तो वे हिंदीवालोंसे भी अच्छा कर लेते थे। उनसे बंगलेपर मुलाकात की। उन्होंने मेरा कई यंत्रोंद्वारा नीचेसे ऊपरतक निरीक्षण किया। इसके बाद उन्होंने कहा कि इस रोगका खास कारण कब्ज है। इसलिए उन्होंने मुझे पेट साफ रखनेकी जोरसे सलाह दी। खानेके लिए उन्होंने मुझे फल, हरी तरकारियां और सब्जियां, कच्चा प्याज तथा चोकरसमेत आटेकी रोटी बताई। उन्होंने मुझे दोनों वक्त यानी सुबह और शाम खुली हवामें करीब पैंतालीस मिनटतक घूमनेका भी आदेश दिया। एलोपैथिकके सेवक होनेके कारण उन्होंने कुछ मामूली दवाओंके नाम भी लिखकर दिए। जो दवाइयां उन्होंने बताई थीं वे मैंने खरीद तो लीं पर इस बीच कई प्राकृतिक चिकित्सासंबंधी पुस्तकें पढ़नेके कारण दवाओंपरसे मेरा विश्वास प्रायः उठ चुका था। इसलिए मैंने उन्हें छुआतक नहीं। हां, धूप-पानीके कुछ साधारण प्रयोग अवश्य करने लगा। डाक्टर साहबकी बताई बातोंका अमल मैं आजतक भी कर रहा हूं। वे मेरी आदतमें दाखिल हो चुकी हैं। चार वर्षका समय हो गया और तबसे अबतक मुझे फिर गठियाका दौरा नहीं हुआ है।

—श्रीहीरालाल अड़ूकिया

(२)

चार वर्ष पहलेकी बात है मुझे गठिया हो गया। पैरके घुटनोंमें दर्द था, अधिक दूर चलने या तेजीसे चलनेपर दर्द होने लगता। सोते वक्त भी दर्द होता। दर्द कभी तीव्र नहीं हुआ पर यह मीठा-मीठा दर्द कभी चैन न लेने देता, न मैं इसके कारण कोई काम ही कर पाता। मैंने स्थानीय वैद्यजीसे बहुत-सी चिकित्सा कराई पर लाभ न होनेपर हारकर मेरे पिताजी सतनाके सरकारी अस्पतालमें ले गए। वहांके डाक्टरने मेरे रोगको बहुत साधारण बताया और ढाई महीनेतक इंजेक्शन-पर-इंजेक्शन लगाए, दवाएं पिलाईं पर जिस रोगको वैद्यजीकी साधारण गोलियां और तेल दूर न कर सके वह डाक्टरकी सूइयोंके वशमें भी नहीं आया और मैं रोगी-का-रोगी ही रह गया।

मेरे पिताजीने प्राकृतिक चिकित्साका नाम सुन रखा था पर उन्हें प्राकृतिक चिकित्सा क्या है, इसका ज्ञान न था। वे समझते थे कि यह भी किसी प्रकारका औषधोपचार ही है पर किसी जानी चिकित्सासे मुझे लाभ न होते देखकर एक अनजानी चिकित्सा करानेके लिए मुझे मेरे भाईके साथ उन्होंने आरोग्य-मंदिर भेज दिया।

यहांकी चिकित्सा देखकर मुझे और मेरे भाई साहबको बड़ा आश्चर्य हुआ। मुझे लगा कि पानी-मिट्टीसे क्या होगा। इसलिए मैंने यहांसे चल देनेका विचार किया पर भाई साहबने कहा कि दो-तीन दिन ठहरकर यहाँ रोगियोंसे पूछताँछ करनी चाहिए और यदि यह पता लगे कि रोगीको लाभ होता है तो तुम्हें यहां चिकित्सा करानी चाहिए। हमें तो लाभसे मतलब है। चिकित्सा किस तरह होती है इससे हमें क्या प्रयोजन ? उनकी

बात मेरी समझमें आ गई और हम लोग तीन दिन आरोग्य-मंदिरमें मेहमानकी तरह रहे और लोगोंसे बात करते रहे। सबने लाभ बताया पर अधिक प्रभावित मैं एक रोगीसे हुआ जो गठिएका ही रोगी था और जब यहां आया था तो चल भी नहीं सकता था। एक महीनेके भीतर ही चलने लगा था। वह हमारे ही निकटका व्यक्ति था। उसने वड़ा जोर दिया कि मैं चिकित्सा कराऊं। अतः मैंने अपनी चिकित्सा वहां शुरू करवा दी।

चिकित्सा तो वहां सबकी एक ही तरहकी होती है, प्रायः सबके ही भोजनमें परिवर्तन किया जाता है, किसीको फल मिलते हैं तो किसीको फल-दूध तो किसीको रोटी-सब्जी भी मिलती है और अन्य चिकित्सा भी करीब-करीब वही होती है। सिर्फ रोगीका बलाबल देखकर नहान वगैरहके समय और पानीकी गरम ठंडकमें फेर-बदल कर देते हैं।

मेरी चिकित्सा शुरू होते ही सुबह फल, दोपहर रोटी-सब्जी और शामको फल-दूध दिया जाने लगा और चिकित्साके शुरूमें तीन दिन एनिमा भी दिया गया लेकिन फिर पेट सुबह-शाम साफ होने लगनेपर एनिमा बंद कर दिया गया।

चिकित्सामें सुबह-शाम कटि-स्नान और दिनके दस बजे सप्ताहमें दो दिन भापनहान, दो दिन गीली चादरका बंधन और और दो दिन धूप-नहान दिया जाने लगा।

उपवास सप्ताहमें एक दिन करवाया जाता। चिकित्सक तो चाहते थे कि मैं एक सप्ताहका उपवास कर लूं पर मेरी उपवासके प्रति अरुचि होनेके कारण उन्होंने सप्ताहमें एक दिन उपवासका विधान बनाया।

इस भोजन-परिवर्तन चिकित्सासे शुरूमें कोई पंद्रह दिन कमजोरी मालूम हुई पर इसके बाद ही दर्द भी कम होने लगा

और ताकत भी आने लगी। एक माहकी चिकित्सामें दर्द मेरा आधा ही गया और इसी समय खरबूजेकी फसल आ गई तो

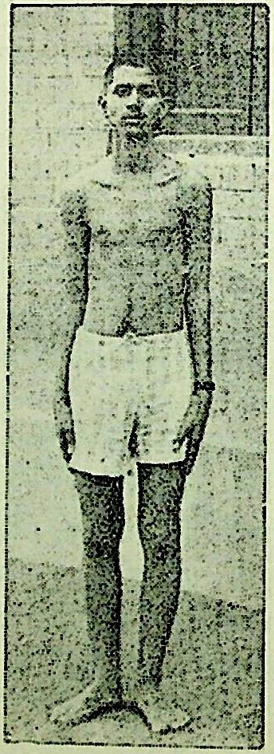

लेखक : रोगकी अवस्थामें

उन्होंने मुझे दो सप्ताह केवल खरबूजा खिलाकर रखा। इससे वजन तो कम हुआ पर दर्द करीब-करीब बिल्कुल चला गया। अब मुझे फलके साथ दूध भी मिलने लगा और मैं धीरे-धीरे

सुबह फल-दूध और दोपहर-शाम रोटी-सब्जीके भोजनपर आ गया। इस भोजनपर आते ही मेरा घटता वजन रुका और फिर तेजीसे बढ़ने लगा।

लेखक : स्वस्थ होनेपर

चिकित्सालयमें मुझसे आसन भी कराए जाते थे और कुछ कसरतें भी। घर आकर मैंने कसरतें जारी रक्खीं और

भोजनमें सुबह दूध-फल और दोपहर-शाम रोटी-सब्जी ही रखी। दूसरे भोजनके प्रति मेरी रुचि ही नहीं रह गई थी और रोटी-सब्जी फल-दूधके अतिरिक्त और अधिक स्वादिष्ट है भी क्या कि मन चले।

आज चिकित्सा कराए मुझे तीन वर्ष हो गए पर मैं तबसे अबतक कभी बीमार नहीं पड़ा। मैं स्वस्थ रहना जान गया हूं। और मौजसे जिंदगी व्यतीत कर रहा हूं। न मुझे शारीरिक काम थकाते हैं न मानसिक। मैं प्राकृतिक चिकित्साका कृतज्ञ हूं।

—प्रेमचंद्र अग्रवाल

: २५ :

बवासीर

मैं छः-सात सालोंसे खूनी बवासीरसे भुगत रही थी। शुरूके दिनोंमें सालमें दो-तीन बार दौरा आता था और दो-तीन दिनोंमें ही बहुत खून निचुड़ जाता, इससे मैं काफी कमजोर हो जाती। पर बढ़ते-बढ़ते छः-सात महीनोंमें तो यह हालत हो गई कि हर समय मसोंमें दर्द बना रहता और पाखानेके वक्त तो भयंकर पीड़ा होती, खून भी बहता। बहुत बड़े-बड़े छ-सात मसे बन गये थे। जिनकी असह्य वेदनाके कारण हरदम तड़पा करती थी। अंतमें कमजोरी यहांतक बढ़ी कि खाटसे उठना कठिन हो गया। कहावत है, 'माड़ा डंगर सरबस रोग', अन्य अनेक रोगोंने भी आ घेरा। जिगर, मेदे, अंतड़ियोंने अपना काम छोड़ दिया। कोई चीज हजम नहीं होती थी। हृदयकी हालत बहुत तेज रहती, देखनेवाला समझता बुखार है। हरकत कम होते ही बुखार भी जाता रहता। कमजोरीके कारण बेहोशी शुरू हो गई।

अपने घर लायलपुरमें लायक डाक्टर-वैद्योंकी बहुत दवाइयां कीं, पर फायदा नहीं हुआ। हर समयके दर्द और कमजोरीके कारण जीवनसे निराशा हो गई। मेरे घरवाले भी मेरा जीवन-दीप अब बुझा तब बुझा यही समझ रहे थे। मैंने अपने पतिदेवसे अपने बहन-भाइयोंसे मिला देनेकी प्रार्थना की। तदनुसार वह मुझे लुधियाना लाये। यहां भी देखनेवालोंने मुझे चंद दिनोंका मेहमान बताया। पर जबतक सांस तबतक आस। मेरी बहनने

कहा कि उसके पति प्राकृतिक चिकित्सक हैं; मैं उनसे इलाज करवाऊं शायद फायदा हो। मुझे कुछ धीरज आया और मैंने अपने बहनोईका इलाज शुरू किया। इलाज तो साधारण था। पर इसके सामने डाक्टरी और वैद्यक तो घरमें खोई चीज बाहर ढूंढ़ते फिरनेके समान नजर आये। उन्होंने जो परहेज करवाये वह आश्चर्यजनक थे।

(१) पहले तीन दिन उबले पानीमें सिर्फ शहद और नीबूका रस पिलाया।
(२) उसके बाद दो दिन सेव और संतरेका रस निचोड़कर।
(३) फिर तीन दिन सेव और संतरे खाकर।
(४) बादको एक समय पतला दलिया।
(५) फिर तीन दिन बाद साथमें सब्जी बिना घीके।
(६) फिर कुछ रोटी (घरके पिसे, मोटे, बिना छने आटेकी)।
(७) एक मास बाद जरा घी भी शुरू किया।

लोग कहते हैं 'अन्नमें ही प्राण है।' पर मैं तो अन्न खाते-खाते ही कमजोर हुई थी और मेरी यह हालत हो गई थी कि किसी खानेकी चीजकी ओर देखनेको भी जी न चाहता था। अब कमजोरी दूर हो गई, भूख खूब बढ़ी, खाना हजम होने लगा, सब अंग अपना काम करने लगे। भोजनकी बात तो ऊपर मैंने कही ही है, इलाज यह हुआ कि मुझे पंद्रह मिनट सहते-सहते गरम पानीके टबमें बिठाते; उसके बाद तुरंत तीन मिनट ठंढे पानीमें। फिर बदन पोंछकर गर्मी लानेको एक घंटा रजाई ओढ़ाकर लिटाते। मस्सोंपर चिकनी मिट्टी सानकर, टिक्की बांधी जाती; जो थोड़ी-थोड़ी देरपर बदल दी जाती। इन उपायोंसे मैं दिनोंदिन तंदुरुस्त होने लगी। कहां तो मेरी यह

हालत थी कि मैं बिस्तरेसे उठ न सकती थी और अब चार-चार मीलका चक्कर काटने लगी। और तिसपर भी थकावट नहीं आती। हड्डियां जो मांस छोड़ चुकी थीं, पुट्ठे कमजोर होकर मांस ढीला पड़ गया था और नाखून जो सफेद हो गये थे, उनमें फिर सुर्खी आ गई। पुराना साथी दर्द चला गया और नींद जिसने मुद्दतसे किनारा कस रखा था, वह आने लगी। मस्से सूखकर झड़ गये। जिन्होंने मुझे रोगी देखा था, अब मेरा यह स्वास्थ्य देखकर हैरान होते थे।

यह सारी दया प्राकृतिक इलाज़की थी। मैं अपने रोगी और दुःखी निराश भाई-बहनोंसे प्रार्थना करती हूं कि इस इलाजकी शरण लेकर अपना जीवन सुधारें। दवाइयां रोगकी जड़ नहीं खोतीं बल्कि दबाती हैं। यह इलाज रोगकी जड़ मिटाकर शरीरकी हालतको बदल देता है।

—श्रीमती मायादेवी

(२)

मेरे बारह वर्षकी उम्रकी बात है मुझे शौच जाते डर लगता था, हाजत होती और मेरी जान जाती। अधिक जोर होनेपर जाता पर डरते-डरते पाखानेके लिए बैठते ही पहले मलके बदले खून गिरता। खून देखता और घबराकर हाजतको रोकनेकी कोशिश करता। पर जबतक मल न निकलता, चैन न पड़ती, इसलिए बैठा रहता, घंटों लगता। हारे जुआरीकी शक्ल लेकर पाखानेसे लौटता। बड़ी मजबूरी थी। खुद कुछ जानता न था और किसी डाक्टर या हकीमकी शरण लेना नहीं चाहता था। लेता तो तब जब देनेको पासमें कुछ होता? साल-भरमें घर से ३०-४० रुपये आते थे जो फीस और पुस्तकोंको

भी काफी न होते थे। जिनके यहां रहता, उनकी स्थिति भी ऐसी नहीं थी कि उनसे अपनी बीमारीको दूर करनेमें कुछ आर्थिक सहयोग लेता। वह रहने और भोजनकी मदद देते थे, वही क्या कम था। कभी मैंने उनसे अपना दुःख नहीं कहा। पाखानेकी देरके लिए वह कभी-कभी नाराज भी होते, मजाक करते। वहुत वुरा लगता, पर लाचार शांत रह जाता।

कुछ दिन इसी तरह बीते और भी कई बीमारियोंने घेरा। इन सबमें खुजली प्रधान थी। मैट्रिकमें खुजलीके कारण छः महीने बीमार रहा, पूरा एक वर्ष बेकार गया।

कालेजकी पढ़ाईके लिए हैदराबाद आनेपर विद्यार्थी-गृहके मंत्री श्रीसत्यनारायणजी लोया (एड्वोकेट) से परिचय हुआ। परिचय आत्मीयतामें परिणत हुआ। मेरे विवाहमें उन्होंने उपहारस्वरूप मेरे नाम एक वर्षके लिए 'आरोग्य' (गोरखपुर) शुरू करवा दिया। पैसोंके ख्यालसे इस उपहारका महत्त्व दुनियाकी दृष्टिमें गौण हो सकता है पर मेरे लिए तो उपहार जीवनदाता बन गया। इसे पढ़नेसे प्राकृतिक चिकित्साकी ओर झुकाव हो गया। 'आरोग्य' के नियमित अध्ययनने स्वास्थ्य-लाभके सरल और सहज साधनोंका ज्ञान करा दिया। श्री-लोयाजीके प्राकृतिक चिकित्सामें होनेवाले प्रत्यक्ष अनुभवोंने तो प्राकृतिक चिकित्सामें मेरी आस्थाको और भी दृढ़ वना दिया। मैंने श्रीलोयाजीसे लेकर प्राकृतिक चिकित्सासंबंधी और भी साहित्य पढ़ा इससे प्राकृतिक चिकित्साके मूल मंत्रोंकी जानकारी हुई। मिट्टी, पानी, हवा, धूप, एनिमा, उपवास, फल, तरकारी आदिकी विशेषता समझमें आई। इन प्राकृतिक साधनोंसे लाभ उठानेकी इच्छा प्रबल होती गई। धीरे-धीरे इनपर अमल शुरू हुआ। रोजानाके आहारमें दूध, फल और सब्जीकी मात्रा

बढ़ा दी। बीचमें एक महीने तो फलाहार ही करता रहा। फलोंकी मात्रा बढ़ाकर अन्नकी मात्रा कम करता गया। धीरे-धीरे अन्न छूट गया। केवल तीन बार फल और एक बार दूध लेकर रहने लगा। पहले कुछ कमजोरी मालूम हुई पर काम करनेका उत्साह बढ़ने लगा।

कब्ज धीरे-धीरे दूर हुआ। पेशावकी जलन दूर होकर पेशाव साफ और निर्विकार होने लगा। पाखानेमें घंटोंका समय व्यर्थ नष्ट होता था वह बचने लगा। अब पांच-सात मिनटसे ज्यादाकी जरूरत नहीं रही।

सबसे बड़ा लाभ तो बवासीरसे छुटकारा मिला। पहले ज्यों-ज्यों गरमीका मौसम समीप आता मैं घबराता, क्योंकि गरमीमें इसका जोर बढ़ता था पर इस वर्ष गरमी अधिक होनेपर भी कभी मुझे बवासीरकी पीड़ाने नहीं सताया। मुझे विश्वास हो गया है कि मेरी बीमारीकी जड़ जाती रही है। हां, इस भयंकर बीमारीसे पिंड छुड़ानेके लिए मुझे कुछ 'बलिदान' भी करना पड़ा है। पाठक, 'बलिदान' के नामसे घबरायें नहीं, कारण, यह बलिदान सबके लिए साध्य है और संभव भी। मिर्च, मसाले और चटपटी चीजोंके स्वादका त्याग। कुछ दिन पहलेतक मैं नमक,मिर्च, मसालोंसे लथपथ चीजोंको ही स्वादिष्ट, रुचिकर समझता था। शायद अधिकांश लोग ऐसा ही समझते हैं पर आज अपने स्वतःके अनुभवसे कह सकता हूं कि यह स्वादका भूत केवल काल्पनिक है। आप जिस दिन इस विचारको छोड़ देंगे कि मिर्च-मसालेसे रसोई स्वादिष्ट बनती है, उसी दिनसे आपको साग-सब्जीमें बिना मिर्च-मसालेके ही आनंद आने लगेगा। जरूरत दृढ़ निश्चयकी है।

संभव है अनुभवके लिए मिर्च-मसालेके बिना काम चलाना

चाहनेवालोंको दृढ़ विश्वासके अभावमें हफ्ते-दो-हफ्ते रसोई फीकी लगे पर एक बार बरदाश्त कर लेनेपर उन्हें जीवनके वास्तविक आनंदका अनुभव होगा। निसर्गने जो चीजें स्वयं पूर्ण बनाई हैं उनमें कृत्रिम स्वाद लानेकी चेष्टा करना स्वतःके लिए गड्ढा खोदना है। फलोंका नैसर्गिक रूपमें सेवन करना केवल उनके सुस्वादका आनंद लेना ही नहीं बल्कि उनका रसके रूपमें अमृतपान करना है। जो जीवनशक्ति उससे प्राप्त होती है वह न केवल स्वादका ही कारण बनती है बल्कि मनुष्यकी बीमारियोंको जड़से निकालकर उनमें नवज़ीवनका संचार करनेमें सफल सिद्ध होती है।

—रामानुजदास भूतड़ा

: २३ :

पैर सीधा हो गया

जीवनके पैंतीस वर्ष पहलेकी वह घटना मेरे लिए आज भी महत्त्व रखती है। प्राकृतिक चिकित्साका यदि मुझे अवलंबन न कराया जाता तो मैं आज लंगड़ा तो होता ही, और न जाने और क्या दुरवस्था होती, जिसकी मैं इस समय कल्पना भी नहीं कर सकता। उस समय मेरी आयु दस वर्षकी थी। यह घटना १९१५-१६ की है। गवर्नमेंट हाईस्कूल बाराबंकी (अवध) में पांचवीं कक्षामें पढ़ता था। अकस्मात् विना किसी दुर्घटनाके मेरे दाहिने पैरमें घुटनेके ऊपर हलका-हलका दर्द होने लगा और ऐसा प्रतीत हुआ कि पैर टेढ़ा होता जा रहा है। चलने-फिरनेमें पराश्रित हो गया। मुझे याद है कि मेरे पिताजी मुझे गोदमें या कंधेपर लेकर अस्पताल ले जाया करते थे। थोड़े दिनों कई इलाज चले। मुझे याद नहीं कि कौन-कौन-सी दवाएं दी गयीं पर पैरकी अवस्था सुधरी नहीं, विगड़ती ही गई।

बाराबंकीसे लखनऊ थोड़ी ही दूर है। मेरे पिताजी उस समय गवर्नमेंट स्कूलमें अध्यापक थे, संभवतः ७०-८० रुपया वेतन था। वह मुझे लखनऊ किसी योग्य डाक्टरके पास ले गये। उसने क्या बताया, क्या नहीं—यह तो उस समय मेरी समझके बाहर था। पर यह स्पष्ट था कि पिताजीको इससे संतोष न हुआ। वे चिंतातुर अवश्य थे, और यह बात मैं आज अच्छी तरह समझ सकता हूं कि लखनऊमें रहकर मेरा इलाज कराना

उनकी सामर्थ्यसे बाहर भी था। यह अच्छा ही हुआ नहीं तो, न जाने मेरे पैरकी क्या-क्या दुर्दशा की जाती।

संयोगकी बात है कि बाराबंकीके आर्यसमाजमें पंडित गणेशप्रसादजी नामक एक सदस्य थे, जो वहीं किसी सरकारी दफ्तरमें नौकर थे। उनको जल-चिकित्साका थोड़ा-सा परिचय था। उन्हें अनुभव तो अधिक न था, पर इस पद्धतिमें उनकी निष्ठा अवश्य थी। उनके परामर्शसे यह निश्चय हुआ कि मेरे पैरकी प्राकृतिक चिकित्सा की जाय। अस्तु, क्रम आरंभ हुआ। भोजनका नियंत्रण हुआ। चोकर मिले हुए आटेकी रोटी,लौकी, तरोईकी तरकारी और साग-पात इन सबका जिस दृढ़तासे (रुचिके प्रतिकूल) मैंने सेवन किया उसकी प्रशंसा मेरे संबंधी आज भी किया करते हैं। क्रमसे कटि-स्नान और मेहन-नहान दिनमें तीन-चार बार लिये जाने लगे। प्रति सप्ताह भाप-स्नान कभी-कभी समस्त शरीरको और कभी-कभी केवल घुटनेको कराया जाने लगा। मुझे यह भी याद है कि कई बार धूपमें लिटाकर घुटनेपर केलेका पत्ता और ऊपरसे चादर उढाकर मुझे धूप-स्नान भी कराया गया था।

लगभग दो मासके अनंतर मेरे दाहिने घुटनेके ऊपरका दर्द खिसककर घुटनेकी बायीं ओरके पार्श्वमें आ गया। यह पार्श्व कुछ सूज गया और लाल पड़ने लगा। भाप और धूपका प्रयोग तो चलता ही रहा, पंडित गणेशप्रसादजीके परामर्शसे साफ चिकनी मिट्टीकी पट्टी सूजनपर रखनी आरंभ कर दी गई और कभी-कभी ठंडे पानीकी गद्दी भी रक्खी जाने लगी। मुझे उस दिनकी अबतक याद है जिस दिन मिट्टीकी पट्टी उठाते ही उसके नीचे एक छोटा-सा छेद दिखाई दिया। ऊपर बताये गये सभी उपचार चलते रहे। सूजनके ऊपरका छिद्र

धीर-धीरे बढ़ने लगा, और एक बड़ा-सा फोड़ा बन गया। और इसके पास ही एक दूसरा छेद आरंभ हुआ। मित्रोंको आशंका हुई कि कहीं व्रण सेप्टिक न हो जाय। पर पं० गणेशप्रसादजी और पिताजीकी दृढ़ताके कारण उपचार-पद्धतिमें परिवर्तन न हुआ। घावपर मिट्टी और पानीकी गद्दी बराबर क्रमसे रक्खी जाने लगी। संपूर्ण उपचारमें ५-६ मासका समय लगा। घावसे पीव निकलना धीरे-धीरे बंद हो गया और फिर घाव अपने आप भरकर सूख गया। तबसे मेरा लंगड़ापन सदाके लिए मिट गया और आजतक मेरा यह पैर पूर्णतः स्वस्थ है। केवल उस घटनाकी याद दिलानेके लिए मेरे घुटनेके पार्श्वमें दो चिह्न हैं—एक तिकोना (एक इंच भुजाका समत्रिबाहु त्रिभुज) और एक पाई बराबर गोल। हम लोगोंकी दृष्टिमें प्राकृतिक एवं जल-चिकित्साका यह प्रयोग एक चमत्कार था। मैं इसके लिए पं० गणेशप्रसादजीका आभारी हूं।

तबसे आजतक प्राकृतिक जीवनके मैंने अनेक प्रयोग किये। ज्यों-ज्यों मैंने रसायनशास्त्रका अधिक अध्ययन किया और शरीर-रसायनको समझनेका प्रयत्न किया, ओषधि-सेवनकी ओरसे मुझे उपेक्षा होती गई। ओषधिपानका क्षेत्र मैं बहुत सीमित समझता हूं। साधारण रोगोंमें ही नहीं, बहुतसे जीर्ण रोगोंमें भी उपवास और भोजन-नियंत्रणसे जितने लाभ होते हैं, उतने ओषधि-पानसे नहीं। मैं अपने दो अनुभव और देकर इन विचारोंकी पुष्टि करना चाहता हूं।

मुझे भलीभांति स्मरण है कि सन् १९३१ तक जब कभी ऋतु-परिवर्तन होता था, तो मुझे हलका-सा जुकाम और कुछ ज्वर हो जाता था। वर्षमें चार-पांच बार ऐसा होना साधारण बात थी। मैंने अपने अनेक मित्रोंको इस प्रकारका पाया है कि

वे ऋतु-परिवर्तनको सहन नहीं कर सकते। उन दिनों शीतकाल-में मैं रुई या ऊनके वस्त्रोंका विशेष प्रयोग करता और कंवल ओढ़कर वायु-सेवनके लिए निकलता था। सन् १९३२में मैंने दृढ़तापूर्वक गरम वस्त्रोंका परित्याग कर दिया। शीतकालमें भी खुलेमें सोया। फलतः तबसे आजतक मैं ऋतु-परिवर्तनसे निरपेक्ष हो गया हूं, और पूर्व प्रकारके जुकाम और ज्वरसे कभी पीड़ित नहीं हुआ। मेरी कुछ ऐसी धारणा है कि प्रकृतिका विरोध करके मनुष्य स्वास्थ्यका लाभ नहीं कर सकता। सच्चा स्वास्थ्य प्रकृतिके सहयोगसे ही मिल सकता है।

डाक्टरी उपचारोंके थोथेपनके अनुभवका मुझे एक और अवसर मिला। सन् १९३३ और १९३४के ग्रीष्मावकाशमें मैं कलकत्ते चला जाता था। कलकत्तेके क्लोरीन-मिश्रित पानीका मुझपर बुरा प्रभाव पड़ा। फलतः मेरा सांस फूलने लगा और मलवद्धता हो गई। मुझे श्वासरोग होनेकी आशंका हुई। अपने कुछ और मित्रोंसे पता चला कि उन्हें कलकत्तेके पानीसे ऐसा ही कष्ट उठाना पड़ा था। उन दिनों प्रयाग वापस आकर मैंने कुछ डाक्टरों और वैद्योंका भी आश्रय लिया, पर कुछ लाभ न हुआ। बादको मैंने देखा कि यह रोग कालांतरमें स्वयं ही आहारादिके नियंत्रणसे दूर हो गया। संयम और सात्त्विका-हार स्वास्थ्यकी कुंजी है। हां, इस वातकी मैंने शपथ तो नहीं खाई कि ओषधियोंका सेवन किया ही न जायगा, पर इसका मुझे पूर्ण निश्चय है कि जिस विस्तारसे ओषधियोंका सेवन किया जा रहा है वह न केवल अनावश्यक प्रत्युत हानि-कारक है।

—डॉ० सत्यप्रकाश, एम० एस-सी०, डी० एस-सी०

: २७ :

गर्भपात

मुझे यह लिखते बड़ी प्रसन्नता होती है कि प्राकृतिक चिकित्साने मुझे एक सुंदर स्वस्थ बच्चेकी मां बननेका सुअवसर दिया। चि० अरविंदके पैदा होनेके पहले मुझे तीन बच्चे हुए थे, पर तीनों ही मरे हुए। गर्भ रह जानेपर ज्यों-ज्यों वह बढ़ता त्यों-त्यों गर्भमें पानी इकट्ठा होता जाता। पेट इतना बड़ा हो जाता मानो दो बच्चे हों। कमजोरी बढ़ती जाती, मेरा मुंह पीला पड़ जाता, बच्चा समयसे डेढ़-दो मास पहले ही हो जाता। तीनों बार ऐसा ही हुआ। पहला बच्चा पैदा करानेवाले डाक्टरका कहना था कि पहलेसे जच्चाकी देख-भाल की जाती तो ऐसा न होता। अतः दूसरी बार गर्भवती होनेपर मुझे उनकी देख-भालमें रखा गया। वह अनेक पेटेंट दवाइयां शुरूसे ही खिलवाते रहे, कई प्रकारके इंजेक्शन दिए। भोजन भी उन्होंने जो बताया वही किया। पर इस बार भी जब मेरी हालत वैसी ही होने लगी तो सब बहुत चितामें पड़े। उन डाक्टर साहबकी सलाहसे और भी कई बड़े डाक्टरोंको दिखाया गया, उनकी दवा भी ली। पर बच्चा पहलेकी भांति ही वक्तसे पहले और मरा हुआ पैदा हुआ। डाक्टरोंने इसे मेरा भाग्य बताकर छुट्टी पाई। तीसरी बार गर्भवती होनेपर मैंने वैद्योंकी शरण ली। गर्भमें बच्चा बढ़नेपर जब फिर मेरी पहले-जैसी हालत होने लगी तो मैं अच्छे डाक्टरकी तलाशमें बंबईके चिकित्सकसमुदायसे निराश होनेके कारण, बंबई-जैसी

बड़ी जगहको छोड़कर नागपुर, जबलपुर, दिल्ली, शिलांग,

लेखिका और चि० अरविंद

अहमदाबाद गई। वहांके सभी बड़े-बड़े डाक्टरोंसे राय ली

उनकी जेबें भरीं, उनके अनुसार चली पर फल पहले दो बार-जैसा ही निकला। अब मेरी निराशाकी हद न रही। मैंने मां बननेकी आशा ही छोड़ दी।

चौथी बार जब मैं फिर गर्भवती हुई तो मेरी बड़ी बहन सौ० सरयू लोयाने आरोग्य-मंदिर, गोरखपुर जानेकी राय दी। वह वहांसे परिचित थीं। वहांसे सलाह लेकर बहुत लाभ उठा चुकी थीं। मैं उनके साथ गोरखपुर गई। साथमें उनके पति अर्थात् मेरे जीजाजी भी थे। प्राकृतिक चिकित्सापर विश्वासके साथ-साथ उन्होंने प्राकृतिक चिकित्सापर साहित्य भी पढ़ा है। रास्तेमें उन्होंने मुझे प्राकृतिक चिकित्साके सिद्धांत समझाए तो मुझे आशा हुई कि मेरी मनोकामना पूरी हो सकती है।

आरोग्य-मंदिरके वातावरणसे मुझे बड़ी खुशी हुई, लगा जैसे, मैं एक बड़े परिवारमें आ गई। वहां आठ-दस बहनें अपने भिन्न-भिन्न रोगोंके लिए चिकित्सा ले रही थीं। मेरी उनसे शीघ्र ही जान-पहचान हो गई और फिर मैत्री।

चिकित्सकने मेरे स्वास्थ्यके बारेमें देख-सुनकर बताया, कि यदि स्वास्थ्य स्वाभाविक और कटिप्रदेश पुष्ट हो जाय तो स्वाभाविक रूपसे स्वस्थ बच्चा होना ही चाहिए। इसके लिए उन्होंने मेरा भोजन स्वाभाविक किया—रोटी, सब्जी, फल, दूध। यहांके भोजनके कारण मुझे पता चला कि भूख किसे कहते हैं और यह भी ज्ञात हुआ कि भूख सादे भोजनको कितना स्वादिष्ट बना देती है।

इस भोजन-सुधारके साथ मुझे सुबह-शाम कटि-स्नान कराया जाता, कभी मालिश मिलती, कभी सारे बदनकी गीली पट्टी। मैं धूप-सेवन भी करती। यहीं आकर मुझे ज्ञात हुआ कि मुझे कब्ज रहता था; क्योंकि मैंने यहां जाना कि कब्ज न

रहनेपर शरीरमें कितनी ताजगी और हल्कापन प्रतीत होता है और शौच कितनी आसानीसे और थोड़े समयमें होता है।

ऊपर बताए भोजनका अभ्यास होनेपर मुझे नमक छोड़नेकी राय दी गई जो मैं बड़ी सरलतासे कर सकी और शामको रोटी-सब्जीके बजाय फल-दूध दिया जाने लगा। यह परिवर्तन मेरे आनेके दो सप्ताह बाद किया गया।

मैं आरोग्य-मंदिरमें अढ़ाई महीने रही। मेरे स्वास्थ्यमें बड़ा अनुकूल परिवर्तन हुआ। सुस्ती जाकर चुस्ती आ गई। मैं सुबह चार-पांच मील टहलती और शामको तीन मील, पर टहलनेसे मेरी तबियत नहीं भरती। लगता, और टहलूं कि थोड़ी थकान तो आए। हर समय काम करनेको तबियत चाहती रहती। मेरी त्वचाकी रंगत बदली, वह स्वाभाविक सुंदर रक्तवर्ण हो गई। चेहरेपर विचित्र ताजगी छा गई। मैं आश्चर्य करने लगी कि क्यों कोई चेहरेको सजानेके लिए पोमेड पाउडर लगाता है, क्यों नहीं स्वास्थ्य बढ़िया बनाता ? मैंने घर आकर भी आरोग्य-मंदिरका-सा भोजन रखा और टहलना-घूमना, धूपका सेवन जारी रहा। पूरे नौ महीनेपर सात पौंडके अरविंद बाबू हुए। सारे परिवारमें प्रसन्नता छा गई। मेरी खुशीका तो ठिकाना ही क्या था। सुंदर नन्हा-सा मुन्ना मिला और दवाओंसे पिंड छूटनेके साथ-साथ स्वस्थ रहनेका एक बड़ा उपाय हाथ लगा। इन सबके लिए ईश्वरका धन्यवाद !

—श्रीमती पुष्पा तोशनीवाल

: २८ :

पेटका दर्द

करीब दस साल पहलेकी बात है, दिसंबरका महीना था। उस समय आर्यपुत्र[1] मैट्रिककी परीक्षा दे रहे थे, उसी बीच

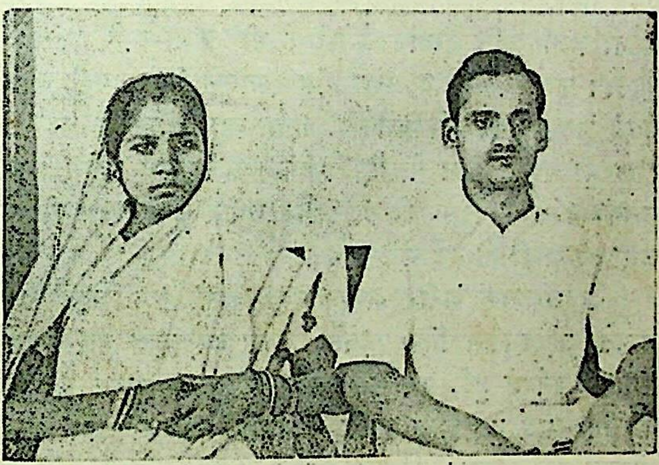

श्रीकमलादेवी और श्रीगोकुलचंद राठी

एक दिन हठात् स्कूलमें ही जाड़ा देकर बुखार आ गया। इलाज चला। पर बुखारने उग्र रूप धारण कर लिया। परीक्षा करके डाक्टरोंने मलेरिया कायम किया। दवाई खाते रहे, पर बुखारने कम होनेका नाम न लिया। दो महीने बाद डाक्टरों-

---

[1] श्रीकमलादेवीके पति श्रीगोकुलचंद राठी

ने कहा, मलेरिया निमोनियामें बदल गया है। निमोनियाका इलाज शुरू हुआ। अंतमें हारकर उन्हें अपनी जन्मभूमि बीकानेर ले गए कि वहांकी अच्छी जलवायुका लाभ मिलेगा। वहां भी बड़े डाक्टरोंके फेरमें पड़े। एक दिनका अंतर देकर इंजेक्शन शुरू हुए। इंजेक्शनोंसे एक बार बुखार दब जाता, पर कुछ दिनों बाद एक नए उपसर्गसहित उपस्थित हो जाता। डाक्टरी इलाजसे निराश होकर वैद्यक उपचार आरंभ हुआ। ज्वर गया, पर पेटकी पीड़ा देता गया। जब-तब पेट दुखता, खाना हजम नहीं होता। मलेरिया भी कभी-कभी दर्शन दे जाता। कुछ दिनों बाद जलवायु-परिवर्तनके लिए दूसरी जगह गए। उससे बुखार तो बिलकुल जाता रहा, और भी तबीयत ठीक हो गई, लेकिन पेटकी शिकायत तो बनी रही। पर उसकी खास परवा न की गई। जब शरीर कुछ स्वस्थ दीखने लगा तो शादी हो गई मेरे साथ।

दो सालतक शरीर अच्छा रहा। इसी समय एक दिन भागते हुए इक्केसे गिर पड़नेसे पेटका दर्द बहुत बढ़ गया। मालिश वगैरह हुई, पर कुछ लाभ न हुआ। हालत यह हो गई कि खाई हुई चीज हजम न होती। बीच-बीचमें पेटमें जोरका दर्द उठता। दर्दसे छटपटाने लगते। सारे घरवाले घबरा जाते, पर किसीका कोई वश न चलता था। डाक्टर आता, इंजेक्शन, मिक्स्चर तथा दवाईकी गोलियां दे जाता। दवाके नशेमें पांच-छः घंटे पड़े रहते, घटते-घटते दर्द अपने आप घट जाता। कुछ दिनों बाद फिर वही दौरा और फिर डाक्टर हाजिर। उसे फीससे काम था। वही नशेकी दवा दे जाता। यह देख-देखकर दवासे मेरा विश्वास उठता जाता था। अब कलकत्ता ले गए। वहांके नामी-गिरामी डाक्टरोंको दिख-

लाया। उन्होंने आपरेशनकी सलाह दी। लेकिन हम आपरेशन नहीं करवाना चाहते थे और मेरा तो उससे खास विरोध था।

चारों ओर निराशाका साम्राज्य था, उसी समय एक उत्साही सज्जन, जिनका नाम शायद श्रीहीरालाल था, आरोग्यके ग्राहक बनाते हमारे निवासस्थान पुरलिया आए। आरोग्यकी एक प्रति दूकानपर दे गए। मेरे पतिने सात आने एक प्रतिका दाम उन्हें देने चाहे, लेकिन उन्होंने ग्राहक बननेका आग्रह किया। शामको आनेका वचन देकर वह बिना पैसे लिए ही चले गए। इस बीच हमलोगोंने आरोग्यका वह अंक अच्छी तरह पढ़ा। इस पत्रिकाका रंग, रूप तथा लेख हमें बहुत पसंद आए। उस अंकमें व्यायामसंबंधी भी एक-दो लेख थे। मेरे पतिको व्यायामका शौक पहलेसे था लेकिन नियमित व्यायाम करते नहीं थे। इन लेखोंके कारण आरोग्य हमें विशेष पसंद आया। हम तबसे उसके ग्राहक बन गए। बराबर आरोग्यका अध्ययन करते रहनेसे हमें प्राकृतिक चिकित्साके प्रति श्रद्धा हो गई।

अब यह विश्वास होने लगा कि प्राकृतिक चिकित्सासे रोग जरूर चला जायगा, शरीर पूर्ण स्वस्थ हो जायगा। आरोग्य पढ़नेका यह परिणाम हुआ कि खाना बहुत सादा खाने लगे। हाथके पीसे आटेकी रोटी, हरी तरकारी और फल, यही खानेमें रहता। पेटके दर्दमें कमी हुई और खाना भी हजम होने लगा। लेकिन खानेमें ज्यों ही विपरीतता होती वापस वही हालत हो जाती। पहले भी दूध लेते ही आंव बनती और अब भी दूध किसी तरह नहीं पचता था। पर शरीरकी कमजोरी नहीं जाती थी, न काम करनेकी हिम्मत आती थी। बीच-बीचमें

आरोग्य पढ़कर उपचार करते, लेकिन उपचारका सही तरीका मालूम न होनेके कारण कुछ फायदा न होता।

बच्चीको लिवर

इसी दरमियान १९४८ में मेरी सालभरकी बच्चीको लिवर-की शिकायत हो गई। मैं सुनती कि लिवरसे बहुत बड़ी संख्यामें बच्चोंकी मृत्यु होती है तो मेरा हृदय आशंकासे कांप उठता। लेकिन प्राकृतिक चिकित्सामें प्रेम हो जाने और अपने पतिके इलाजमें डाक्टरीकी असफलता देखकर डाक्टरी इंजेक्शनों और दवाइयोंसे तो मुझे खास घृणा हो गई थी। पर घरवालोंकी रुचि मेरे खिलाफ थी। मेरी न चलकर उनकी चली। एलो-पेथीका हरेक उपचार किया गया। कोई फायदा न हुआ। बल्कि दो-तीन नए रोग और हो गए। पेटमें केंचुए हो गए और मिरगी आने लगी। हारकर इलाज छोड़ना पड़ा और वह ईश्वरके भरोसे छोड़ दी गई। संयोगसे इन्हीं दिनों आरोग्यमें "यकृतका उपचार" शीर्षकसे एक लेख प्रकाशित हुआ। मैंने उसके अनुसार अपनी बच्चीका इलाज किया। मिट्टीकी पट्टी, एनिमा और कभी-कभी तेलकी मालिश। खानेके लिए गेहूंका सादा दलिया और फल। बस, इतने ही उपचारसे वह चंगी हो गई। इसी उपचारसे उसके और रोग भी चले गए। अब तो हमें प्राकृतिक चिकित्सापर पूर्ण भक्ति हो गई। इसी समय किसी कामसे मेरे पतिको बंबई जाना पड़ा। वहां अपने कुटुंबियोंके बहुत कहने-सुननेसे इन्हें फिर डाक्टरके चक्करमें पड़ना पड़ा। पेटका एक्सरे करवाया गया। डाक्टरोंने बताया पेटमें बाईं ओर नाड़ीमें सूजन आ गई है और जब उसी नाड़ीपर ज्यादा दबाव पड़ने लगता है तो पेट दर्द करता है। आपरेशन

करवानेकी सलाह दी। लेकिन आपरेशनसे तो वह भागते ही थे। उस डाक्टरका भी कुछ चुकना था सो उसने ले लिया। बंबईसे वापस लौटनेपर हमने आरोग्य-मंदिर, गोरखपुर जानेकी तैयारी की।

गोरखपुरके चिकित्सालयमें हमारे इलाज और रहन-सहन-की उचित व्यवस्था हो गई। वहां हमें बिल्कुल घर-सा वाता-वरण मिला। हम यह न जान पाए कि हम कहीं बाहर हैं।

इलाज

पहले तीन रोज पेड़ूपर मिट्टीकी पट्टीके बाद एनिमा दिया गया। खानेके लिए चोकरसमेत आटेकी रोटी, उबली तरकारी और सलाद फिर समूचे शरीरकी गीली पट्टी और बादमें फौरन फुआरेका ठंडा स्नान। इसी प्रकार कभी धूप-स्नान, कभी मालिश तथा कभी-कभी गरम ठंडा स्नान और एनिमा वगैरह दिया जाने लगा। पहले हमेशा सुबह उठकर शौच आदिसे निवृत्त होनेके बाद कटिस्नान पांच मिनटका लेकर बादमें दो-तीन मील घूमने जाना पड़ता। शामको भी कटि-स्नान लेकर कुछ व्यायाम कराया जाता फिर कुछ टहलना।

तीन दिनका संतरेका रसाहार करानेके बाद तीन दिनोंका निराहार उपवास। इन दिनोंमें पानीके साथ संतरे या कागजी नीबूका रस। उपवासके समय रोज एनिमा दिया जाता था। उपवासके जब तीन रोज निकल गए तब दो रोज एनिमा देनेपर पेटसे मल इतना बदबूदार निकला कि किसीका पास खड़ा होना मुश्किल था। कुछ समझमें न आता था कि पांच दिन कुछ न खानेके बाद यह मल कहांसे आया। फिर ध्यानमें आया कि यही मल आंतोंमें जमा हुआ था, जो कभी-कभी

अपना उग्र रूप दिखाता था । डाक्टर लोग उसीको नाड़ीकी सूजन कायम करते, आपरेशनकी सलाह देते । भला, इस जमे हुए मलको डाक्टर आपरेशनसे कैसे निकाल पाते ? पेट काट डालते और नतीजा कुछ न होता। अब हम दोनों सोचते हैं कि भगवानने ही इन्हें डाक्टरके फंदेसे बचाया। अन्यथा, मालूम नहीं उस आपरेशनका क्या दुष्परिणाम होता। उस मलरूपी विषके निकलनेके साथ-साथ रोग भी निकल गया। उपवाससे अधिक कमजोरी मालूम पड़नेपर उपवास तोड़ दिया गया, फिर उसी पहलेवाले क्रमसे रस-फल देते हुए फिर रोटीपर लाया गया।

इलाज करानेके बाद आज करीब दो सालसे मेरे पति पूर्ण रूपसे स्वस्थ हैं । जो दूध कि अमृत होनेपर भी पहले इनके लिए विष था वही दोनों वक्त अब पीते हैं और नियम-पूर्वक कसरत करते हैं। अब तो सपनेमें भी पेटमें दर्द नहीं आता । इस प्रकार इन्होंने नया जीवन पाया।

देखा गया है कि मनुष्य दूसरे सब उपचारोंसे हार जानेपर प्राकृतिक चिकित्साको आजमाने आता है और इससे एक बार ठीक हो जानेके साथ-साथ उसका शेष जीवन भी बड़े आनंद-पूर्वक बीतता है। कारण, जिंदगीमें किस प्रकार रहना चाहिए यह इस चिकित्सा-प्रणालीमें रोगी अपने आप जान लेता है।

हैजेका रोगी

इसके बाद प्राकृतिक चिकित्साको आजमानेके घरमें कई मौके आए। एक गरीब नौकरानीकी लड़कीको हैजा हो गया। गरीबके पास डाक्टरी इलाजके पैसे कहां। फिर भी, उस गरीब-

के पास जो कुछ था सब अपनी लड़कीके दो रोजके इलाजमें डाक्टरके हवाले कर दिया। जब उसके पास खानेतकके पैसे न रह गए तब वह एक रोज अपना पानी भरनेका तांबेका गगरा लेकर मेरे पास पहुंची और बोली "मेरा गगरा गिरवी रख लें और मुझे दस-बारह रुपए दे दें। जब मेरे पास होंगे, मैं लौटाकर ले जाऊंगी या आपके यहां नौकरी करके कटवा दूंगी।" मैंने कहा, गगरा हमारे तो कुछ कामका नहीं है, और तुम्हें पानी भरनेका कष्ट होगा। इसे तो तुम ले जाओ, रुपए भी ले जाओ, नौकरीमें कट जायंगे। उसे पंद्रह रुपए देनेके साथ-साथ मैंने यह भी कहा कि डाक्टरोंके फंदेमें मत फँसो, भगवानपर भरोसा रखो, वह जरूर तुम्हारी लड़कीको अच्छा करेगा। मैंने उसे बतलाया कि एक-एक घंटेके अंतरसे उसके पेड़ूपर मिट्टीकी पट्टी रखना, खाने-पीनेमें गुनगुने पानी और कागजी नीबूके रसके अलावा और कुछ मत देना। उसने घर जाकर ऐसा ही किया। ईश्वरकी कृपा, इतने ही उपचारसे वह लड़की बिल्कुल अच्छी हो गई और तीसरे दिन अपनी मांके साथ हमारे घर भी आ गई। यह नया जीवन है या नहीं ?

बच्चीको छोटी माता

गोरखपुरसे लौटनेके दो महीने बाद मेरी उसी बच्चीको, जो अब पांच सालकी है, छोटी माता निकली। हमें तो अब प्राकृतिक इलाजसे प्रेम और डाक्टरीसे नफरत थी। उसका भी यही इलाज किया गया। एनिमा, मिट्टीकी पट्टी और एक दिन सारे शरीरकी गीली पट्टी। रसाहार तथा दो दिनके उपवाससे बच्ची दस दिनमें अच्छी हो गई। घरके सब डर

रहे थे, लेकिन हम दोनोंको पूरा विश्वास था कि इस इलाजसे यह जरूर अच्छी हो जायगी।

चार साल होने आए हमने आरोग्यके ग्राहक बननेके बाद कोई डाक्टरी दवाई नहीं ली और न बीमार ही पड़े। एक तरहसे डाक्टरका हमारे घर आना ही बंद है। कभी कोई फोड़ा हुआ, कोई जल गया या किसीको चोट लग गई बस ली मिट्टी और लगाई। घरमें मिट्टी, पानी और एनिमाका राज चलता है। पहले तो अंग्रेजी दवाइयोंका शीशियोंका राज था। शीशियाँ आलमारीकी शोभा बढ़ाती रहती थीं। मानो घर कोई डिस्पेंसरी हो। अब हमारे पास उनकी जगह स्वच्छ मिट्टीका मटका भरा है।

जिस मिट्टी और पानीका हमारा यह पुतला बना है उसकी मरम्मतके लिए हमें किसी दवाकी क्या दरकार है? मिट्टी, पानी, पवन, सूर्य और आकाशको हमारे हजार-हजार नमस्कार!

—श्रीमती कमलादेवी राठी

(२)

मेरे पेटमें मीठा-मीठा दर्द हमेशा बना रहता। न खाता तो बंद हो जाता। दो-चार दिनमें फिर शुरू हो जाता। पिताजी कहीं बाहर गए थे, उनके आनेमें देर थी। मेरी मांने वैद्यजीका इलाज करवाया। वैद्यजी लवणभास्कर चूर्ण और हिंगाष्टककी गोलियां देने लगे। कुछ समयके लिए दर्द होता और फिर बंद हो जाता। इस प्रकार तीन महीने बीते।

फिर मुझे बिहारशरीफ ले गए जो हमारे समीप ही है। वहां मल, मूत्र तथा खूनकी जांच करके डाक्टरका इलाज हुआ

पर कुछ बना नहीं। अंतमें पटनेकी बारी आई। एक्सरे किया गया और हर तीन-तीन घंटेपर सूइयां भोंकी जाने लगीं। मेरी तबीयत दिन-प्रतिदिन ज्यादा खराब होने लगी। जी मिचलाता रहता, कै भी होने लगी। दर्द और बढ़ता गया। इस प्रकार तीन हफ्ते गुजरे। मेरी हालत सुबहके चिराग-सी होने लगी। डाक्टरोंने राय दी राजगृहका हवा-पानी अच्छा है वहां जाना चाहिए।

राजगृह गया। वहांके मशहूर तथा अनुभवी वैद्यकी दवा शुरू की। दवा मुंहमें जाते ही कै होने लगती। अंतमें दवा छोड़कर रसाहारपर रहने लगा। दर्दमें कुछ घट-बढ़ चलती रही। किसीने कहा, पेटमें जख्म है। घरके लोग घबड़ा उठे, मुझे पटना जनरल हास्पिटल ले गए। बड़े-बड़े अनुभवी सिविल सर्जनोंने जांचकर देखा। पेटमें जख्म बतलाया। मैं आपरेशनके लिए भर्ती किया गया। उसी समय मेरे पेटमें जोरोंका दर्द हुआ, हरे रंगकी उल्टी हुई, पैखाना बंद हो गया। औरं कभी-कभी बेहोशी होने लगी। वे मेरे जीवनसे निराश हो गए। आठ दिन बाद उसी हालतमें मैं हास्पिटलसे निकाल दिया गया। कहा गया कि आपरेशनके पहले ही लड़का मर जायगा। आपरेशन होना संभव नहीं है; क्योंकि मरीज बहुत कमजोर हो गया है। आपरेशन मुलतवी करके होशियार डाक्टरोंकी सलाहसे खानेकी दवाकी फेहरिस्त बनी। दवाइयां खरीदी गईं। पर शरीरमें दवाकी तेजीको बरदाश्त करनेकी शक्ति नहीं रह गई थी और घरमें रुपयोंकी अत्यंत कमी हो गई थी। कर्ज देनेवाले भी तंग आ गए थे।

अंतमें पिताजी घर ले आए और अपनी पुरानी चिकित्सा आरंभ की। कटिस्नानका टब घरमें था ही। पिताजीकी

आज्ञासे दिनमें तीन बार पानीमें बैठने लगा। पिताजीको कइयोंने कहा कि तुम पागल हो गए हो, इतने कमजोर बच्चेको पानीमें बिठाते हो। पिताजी कभी-कभी मुझसे पूछते, "कैसी है तबियत भूषण?" मैं रोने लगता। पिताजी कहते दवा खाते-खाते तुम्हारी यह दशा हुई है। अब प्रकृतिके सिवाय तुम्हारी रक्षा कोई नहीं करेगा। तीन-चार दिन वाद दर्द घटने लगा। कुछ-कुछ नींद भी आने लगी। संतरेका रस लेने लगा।

लगभग पंद्रह-बीस दिनमें दर्द मिट गया। भूख चमकी। अब दूध भी पचने लगा। इस तरह मैं कुछ दिनोंमें ही स्वस्थ हो गया।

अब मुझे हर दवासे घृणा हो गई है। जब कभी कोई तकलीफ होती है तो पिताजीकी आज्ञानुसार प्राकृतिक चिकित्सा कर लेता हूं और तकलीफ रफा हो जाती है।

—श्रीभूषणप्रसाद

आंव और ज्वर

मैं मुंगेर—विहारका रहनेवाला हूं। जहां अधिकतर चावल मुख्य खूराक है। दोनों वक्तके भोजनमें तो लोग चावल खाते ही हैं जलपानमें भी भूजे अथवा चूड़के रूपमें वही मुख्य रहता है। देहातोंमें ढेंकीका चावल चलता है पर उसका कन (लाल परत) निकाल दिया जाता है। उससे बड़ी बुराई भातसे मांड़ भी निकाल देना है। दोनों वक्त इसी प्रकारका भात, दाल तथा थोड़ी-सी तरकारी और चूड़े-भूजेका जलपान मेरे विद्यार्थी-जीवनभर चलता रहा। इससे मुझे सिर्फ एक बार सवेरे पाखाना होता और कब्ज रहता। पर मैं नहीं समझता था कि कब्जके भी निवारणका उपाय करनेकी जरूरत होती है। इसकी बुराई मैंने बहुत पीछे जानी, शौच दोनों समय जाने लगा। पर मेरे जानेमात्रसे होने तो नहीं लगा। भोजनालयके व्यवस्थापकजीसे शिकायत की तो उन्होंने मुझे सबेरे उठते ही और दिनमें कई बार पानी पीनेकी सलाह दी। फल यह हुआ कि मेरा कब्ज पचास प्रतिशत दूर हो गया। काफी पानी पीनेपर मेरा विश्वास जो उस समय जमा वह आजतक मौजूद है और उससे लाभ पा रहा हूं लेकिन सिर्फ पानी पीनेकी मात्रा बढ़ानेभरसे तो मनुष्य स्वस्थ नहीं रह सकता। ऊपर बताया गया भोजन किशोरावस्थासे युवावस्थाकी ओर जानेवाले व्यक्तिके लिए कैसे उपयुक्त हो सकता है? दूध, दही, फल, शाक, भाजी और गेहूंके पूर्णतः अभावमें शरीरका विकास कैसे हो सकता है और रोगसे कैसे

बचा जा सकता है। आजसे बीस साल पहले जिस आंवकी बीमारीका सूत्रपात हुआ उसका यही कारण था। स्वादेंद्रिय और जननेंद्रियका असंयम भी मैं दूसरा कारण मानता हूं।

आजसे पांच साल पहलेतक मैं अपनी बीमारीको टालता रहा। टालता रहा इसलिए कि मैं अपना साधारण काम-काज किए जा रहा था। कोई विशेष बाधा नहीं होती थी। सन् १९४७ ई० के प्रारंभमें आंवने भयंकर रूप धारण किया। कमजोरी बढ़ने लगी और नियमित बुखार भी रहने लगा। आंवके साथ बुखार—यह बात समझमें नहीं आती थी और जब थोड़ा कफ और खांसी भी आने लगी तब मुझे यक्ष्माका महारोगी मान लेनेमें क्या देर हो सकती थी? दौड़ा-दौड़ा पटने पहुंचा और छः महीनेतक अंग्रेजी दवाएं चलीं। सात सौ रुपए स्वाहा हुए दवाके पीछे।

चिकित्साके प्रारंभकी घटना, जिसे मैं जीवनभर नहीं भूल सकता—पाठकोंके सामने रखनेमें अपनेको रोक नहीं सकता। पटनेके प्रसिद्ध चिकित्सक डाक्टर शरणसे मैंने जांच कराई। उन्होंने आंवका और बुखारका नुस्खा दिया। उससे एक हफ्ते-तक लाभ नहीं नजर आया, तब दुबारा शारीरिक जांच हुई। इस बार उन्हें मेरे बाएं फेफड़ेमें प्लुरसीके चिह्न मिले। दो माहतक बिस्तरपर रहने और काफी सावधानीसे रहनेकी चेतावनी मिली। और अंतमें उन्होंने एक्सरे करानेकी आज्ञा दी। जिन दिनों मेरी चिकित्साका इस प्रकार क्रम चल रहा था, मैं प्लुरसीके बाद टी० बी० और उसके बाद मृत्युकी कल्पनामें घड़ियां बिता रहा था। दिलसे मृत्युका वह भूत तब भागा जब पटनेके ही सर्वश्रेष्ठ डाक्टर श्री टी० एन० बनर्जीसे अपनी

जांच कराई और उन्होंने बताया कि प्लुरसी होनेकी बात गलत है, बुखार आंवके कारण ही है।

अब श्रीबनर्जीका इलाज चला। सारी दवाओंकी आजमाइशके बाद भी जब आंवका कीड़ा पाखानेमें मौजूद पाया ही गया तो माननीय डाक्टर साहबने कहा कि "मैं क्या करूं, मैं तो अंतिम दवातकका प्रयोग कर चुका हूं।" और जब पाखाना जांचनेवाले डाक्टरने अंतमें यह कहा कि "यह बीमारी तो मुझे भी है" तब तो मेरे आश्चर्यका कोई ठिकाना नहीं रहा और धीरज तथा संतोष लेकर मैं घर वापस आया।

इस चिकित्साके चक्करके बाद दो वर्षोंतक मुझे स्वास्थ्यप्रद जलवायुमें रहनेका मौका मिला। अच्छे जलवायुका मेरे स्वास्थ्यपर अच्छा असर रहा और आंव तथा बुखार दोनों उपरोक्त अवधिमें नहीं रहा। गतवर्ष जब मेरी बदली खड्गपुर (मुंगेर) में हुई तो कुछ दिनों बाद मुझे पुनः आंवके आसार दिखाई पड़ने लगे। आरोग्य-मंदिर, गोरखपुरके संचालकसे मैंने पत्र-व्यवहार किया। उन्होंने पूरी सुविधाओंके साथ मुझे अपने आरोग्य-मंदिरमें चिकित्सा करानेकी स्वीकृति दी। सिर्फ पचीस दिन मैं आरोग्य-मंदिरमें रहा और मुझे विशेष आश्चर्य और प्रसन्नता हुई जब इसी अवधिमें मैंने अपने रोगको पूर्णतः निर्मूल पाया। वहां मेरी चिकित्सामें मुख्य बातें यह थीं। १—एक सप्ताहका पूर्ण उपवास, २—लगातार सोलह दिन मिट्टीकी पट्टी (पेड़ूपर) और एनिमा, ३—कटिस्नान और वायु-सेवन (प्रतिदिन)। समय-समयपर कमरकी गीली पट्टी, धूप-स्नान, वाष्प-स्नान और मालिश आदिका प्रयोग भी मुझपर हुआ। वहां मुझे कई नए अनुभव हुए। एक सप्ताह तकका उपवास मैंने जीवनमें कभी नहीं किया था और

जब इतने लंबे--पर वास्तवमें छोटे उपवासको घूमते-फिरते निर्विघ्न समाप्त कर लिया तो मैं बहुत उत्साहित हुआ। मेरी चिकित्साका सबसे बड़ा काम इसी उपवाससे निकला। दूसरा महत्त्वका काम एनिमाद्वारा आंतोंकी सफाईका था। एनिमाद्वारा उपवासकी पूरी अवधिभर आंतोंसे मल-निष्कासन होता ही रहा। एक दिन पाखानेकी जगह काला तरल पदार्थ निकला।

आरोग्य-मंदिर छोड़नेके बाद महीनोंतक मेरा भोजन उबली तरकारियां, मट्ठा, फल तथा दलिया रहा। अब भी अधिकतर मैं इन्हीं चीजोंका व्यवहार करता हूं। अंग्रेजी दवाकी चिकित्साके अंतमें मैं वजनदार हो गया था पर रोग मौजूद था। प्राकृतिक चिकित्साके अंतमें मैं काफी दुबला हो गया था पर रोग निर्मूल हो चुका था। हां, धीरे-धीरे वजन बढ़कर अब साधारण हो गया है। बल और स्फूर्ति तो मेरे अंग-अंगमें नाचती रहती है। कामसे थकना मैं भूल गया हूं।

--श्रीजयदेव सिंह

: ३० :

मीयादी बुखार

मेरी छः वर्षकी बच्ची अलकाने पांच तारीखकी शामको अपने पेटमें दर्द बताया। मामूली अपचका दर्द समझा गया। श्रीमतीजीने बताया कि दर्द कई दिनोंसे हल्का-हल्का चल रहा था और अक्सर इसी वजहसे वह बीचमें रोटी छोड़कर उठ जाती है।

उसे एक शामको जोरका बुखार चढ़ा। पेटपर मिट्टीकी पट्टी रखनेसे सुबहतक उतर गया। लेकिन सातको सुबहसे फिर चढ़ा। मामूली उपचारसे उस दिन न उतरा। सोचा प्रकृतिने रोगको बाहर निकालनेका रास्ता खोज निकाला है अब ठीक हो जायगी।

परं प्रकृतिका रास्ता चौड़ा होता गया। ज्वर अविराम गतिसे बढ़ा और १०३, १०४ डिगरीपर जाकर ठहर गया। पेटका दर्द भी कुछ बढ़ गया। पहले सप्ताहमें ज्वर १०५ डिगरीपर जाकर रुका। गलेपर लाल दाने खोजे गये, किंतु दिखाई न पड़े। पर लक्षण मीयादी बुखारके थे, सुबह ज्वर प्रायः कम रहता, शामको बढ़ जाता।

बुखार चढ़नेके बाद खानेको उसे दूधतक भी न दिया गया। मौसमी और पालकका रस मिलाकर दिया जाता रहा। दूसरे हफ्ते कुछ खांसी भी रही। रोज नीबू मिले पानीका

एनिमा दिया जाता रहा; किंतु ज्वर शामको रोज बढ़ जाता।

इस लड़कीकी तंदुरुस्तीपर मुझे नाज था। अब उसकी हालत देखकर कलेजा मुंहको आता था।

दूसरे सप्ताहके अंतमें जब उससे पट्टी रखनेके लिए कहा, तो उसने जागते हुए भी सुना ही नहीं। परीक्षा करनेके लिये और भी कई प्रश्न पूछे । प्रकट हुआ कि कुछ-कुछ बहरापन भी हो चला था। मनमें भय समा गया। डाक्टरीके नामपर किसी भले आदमीको नहीं न्यौता गया था। हम अपनी डाक्टरी चला रहे थे,और बच्ची मौतके मुंहमें थी। सुन भी रखा था कि इस बुखारके लिए नब्बे नब्बे रुपएकी गोलियोंका सेट डाक्टरोंने ईजाद कर रखा है, और बहुत दिन पहले एक मित्रको वह प्रयोग करते देख भी चुके थे। उसके मुकाबलेमें मिट्टी, एनिमा और मौसमीका रस बड़ी हल्की-सी चीजें मालूम देने लगीं।

मेरे मनकी इस डांवाडोल दशामें बच्चीके दस्तोंकी तादाद बढ़नी शुरू हुई । दिनमें दस-पंद्रह और रातको आठ-दस। सारी रातका जागरण रहने लगा। मलमें कभी आँव निकलता, कभी रंग हरा-पीला होता, कभी बिलकुल काला दिखाई देता। एक दिन शामके समय वह सन्निपातकी हालतमें बड़बड़ाने लगी, तो होश फाख्ता हो गए। मनने कहा कि घरमें ही प्राकृतिक चिकित्सा आजमानेमें कहीं गलती तो नहीं की। माथेपर गीली पट्टी रखी । दिनमें प्रायः तीन-चार बार उसके पेटकी ठंडी-गरम सिकाई की जाती और ठंडी पट्टी बदल-बदलकर रखी जाती। रातको जागनेके लिए कभी मेरी, कभी पत्नीकी

ड्यूटी रहती। लेकिन बच्चीके हाड़ निकल आये थे। ज्वर कम नहीं हो रहा था।

अब मलमें खून भी आने लगा था। चिकित्सा खूब अध्ययन करके विधिवत् की जा रही थी। दिनमें एक बार उसका सिर ठंडे पानीसे भिगोकर पोंछा जाता, फिर सारा बदन अंगोछा जाता। मिट्टीकी पट्टी और एनिमा चलता। इस कमजोर अवस्थामें बिना बिस्तरेसे उठाये शरीरका विष बाहर निकालनेके सारे प्राकृतिक साधनोंका संतोषके साथ प्रयोग किया गया। कई बार पैरोंका गरम स्नान भी दिया गया।

तीन सप्ताहके भीतर मौसमी और पालकके रसके अलावा उसे खानेको कुछ भी न दिया गया। एक दिन तीसरे सप्ताहके आरंभमें दोपहरको ज्वर पांचकी सीमा भी पार कर गया। मैं बहुत घबरा गया, तो बड़े भाई साहबने मुझे आश्वासन दिया। निश्चय हुआ कि बच्चीको सारे बदनकी गीली पट्टी दी जाय।

गरम पानीकी दो बोतलें उसके दोनों पैरोंके पास रखीं। एक चादर भिगोकर बदन नंगा करके उसपर लपेटी। ऊपरसे गरम चादर लपेटकर पौन घंटेके बाद देखा तो बुखार एक डिगरी कम हो गया था। अधिक कम करना ठीक नहीं था। अतः उसे सूखे चादरमें लेकर बदनको अच्छी तरहसे रगड़-रगड़कर पोंछ डाला। फिर हाथसे गरमी पैदा की। अब उसकी तबियत काफी खुश थी। आध घंटा बाद उसका बुखार आधा डिगरी और बढ़ गया। फिर भी वह साढ़े चार डिगरी-तक ही रहा, और वह खतरेसे बाहर थी।

तीसरे सप्ताहके बीचमें ही बुखार एक दिनमें कभी

एक डिगरी घट जाता, कभी दो डिगरी और शामके समय बढ़ जाता। बाईसवें दिन बुखार बिल्कुल उतर गया। फिर भी नौ दिनतक उसे मौसमी और पालकका रस ही दिया जाता रहा। निश्चय किया था कि चिकित्साके सिद्धांतोंके विरुद्ध न जायंगे, क्योंकि अपने लिये अंतिम संतोष यही हो सकता है। इस बीमारीमें बुखारके लौट आनेका बड़ा डर रहता है।

अब टमाटर बिना पकाये,लौकी-की बिना मसालेकी तरकारी उसे दी गई। बुखार उतरने-के दो सप्ताह बाद उसे रोटी दी गई।

फिर उसका स्वास्थ्य जो दिन-दूना रात-चौगुना उन्नत होना शुरू हुआ तो स्वयं हमें भी आश्चर्य होने लगा। अब किसीको प्राकृतिक चिकित्सा-का सिद्धांत समझानेके लिये अलकाको नमूनेके रूपमें सामने खड़ी करता हूं।

—आनंदप्रकाश जैन

(२)

मैं एक साधारण—पर खाते-पीते किसानकी लड़की हूं। मेरी शादीसे पहले मेरी दो बहनें शादीके कुछ ही सालोंके अंदर मर गईं थीं, इससे माता-पिताका प्रेम मुझपर बहुत हो गया था। वह प्रेम रोज दिहाती हलवाइयोंकी बनी मिठाइयां खिला-खिलाकर प्रकट किया जाता। और दिनभर कुछ-न-कुछ खाती ही तो रहती। प्रेमदर्शन दो ही चीजोंसे प्रकट होता है, खूब खिलाना और गुड्डे-सुड्डीकी भांति सजाना। मुझसे काम भी कुछ न लिया जाता। परिणाम-स्वरूप मेरा स्वास्थ्य निकम्मा हो गया और मैं नाना प्रकारकी बीमारियोंसे घिरी रहने लगी। हर दूसरे साल टाइफायड (मीयादी बुखार) मेरी कुंडलीमें लिख गया। एक बारके मीयादी बुखारमें मैं छः महीनेके लिए चारपाईकी मेहमान बन जाती। शरीर हड्डीका ढांचा रह जाता। सिरके सारे बाल उड़ जाते। और वैद्यजीकी बड़ी मेहनतसे दी गई दवा-दारूका सेवन करके बीमार पड़नेके सातवें या आठवें महीने में किसी-किसी तरह अपने आप चलने-फिरने लायक हो पाती। बार-बार इस प्रकार बीमार पड़नेके कारण मेरे मायकेवाले मेरी बड़ी दोनों बहनोंकी भांति मेरे जीवनसे ही निराश रहते। वे मेरे दीर्घ

ले०—ज्वरयुक्त होनेपर

जीवनके लिए अपनी ओरसे झाड़-फूंक और दवाइयोंमें सामर्थ्य-भर उठा न रखते थे। किंतु फिर भी अपनी पारिवारिक परंपराके अनुसार छोटी उम्रमें शादी करनेका साहस न कर पाते थे कि कहीं शादीका खर्चा करा लेनेके बाद मैं भी अपनी दोनों बहनोंकी तरह स्वर्गका रास्ता न पकड़ूं। अतः मेरी शादी कुछ सयानी होनेपर, यानी १७ वर्षकी उम्रमें हुई और मैं शादीके बाद ससुराल चली आई।

ले० ज्वर जानेके दो मास बाद

मेरे पति राजनैतिक कार्यकर्ता और सुधारवादी विचारोंके व्यक्ति हैं। मुझको पढ़ाने-लिखाने और पर्दा-प्रथाको यथासंभव हटाकर स्वस्थ रहनेके लिए कुछ-न-कुछ शारीरिक श्रम करते रहनेको बराबर प्रोत्साहित किया करते हैं; किंतु १७ सालतक पिताके घरमें पड़ी आदत और हीन स्वास्थ्य तथा आलस्यके कारण मैं अपने पतिकी इच्छाके मुताबिक प्रगति न कर पाई। हालांकि ससुराल आनेके ठीक डेढ़ महीने बाद ही उन्होंने सर्व-प्रथम गांवकी जबरदस्त रूढ़िको तोड़कर गांव और घरवालोंकी इच्छाके विरुद्ध मुझे घरके जेलसे निकाला और अपने पास, जहां वे काम करते थे, ले गये। धीरे-धीरे नये वातावरणने मुझमें कुछ साहस पैदा किया और मैं अपनेको नई दुनियामें समझने लगी। लेकिन

शहर आनेके दस महीने बाद ही मेरे पुराने शत्रु मीयादी बुखारने मुझपर पुनः आक्रमण किया। चूंकि और तमाम बातोंकी भांति ही मेरे पति दवा-दारू और स्वास्थ्यके संबंधमें भी चलती धाराके विपरीत ही चलनेवाले आदमी हैं इसलिए उन्होंने मुझे किसी वैद्य, डाक्टर या हकीमकी दवा न दिलवाकर आरोग्य-मंदिर, गोरखपुरमें ले जाकर प्राकृतिक चिकित्सा-पद्धतिके हवाले कर दिया। वहां मैं विना किसी दवाके प्रयोगके चालीस दिनोंमें रोगमुक्त हुई। चिकित्सा बहुत ही साधारण थी। मुझे एक खुले-बड़े कमरेमें रखा गया और खानेकी जगह और पीनेकी जगह केवल पानी ही दिया जाता। हां, पानीमें कोई कंजूसी नहीं की जाती, हर डेढ़ घंटेपर नियमसे पाव-सवा पाव पानी पिलाया जाता और नित्य दिनमें एक बार मेरे सारे शरीरको गीले कपड़ेसे अच्छी तरह पोंछकर बदन और बिछावनके कपड़े वदल दिये जाते। शरीर बड़े ढंगसे पोंछा जाता, इससे मुझे बड़ा आराम मिलता। ज्वर उस समय कुछ कम हो जाता। शरीर पोंछनेमें कोई आध घंटा लगता।

सुबह-शाम मेरे पेड़ूपर मिट्टीकी पट्टी भी आध-आध घंटेके लिए रखी जाती और सुबह मिट्टीकी पट्टीके बाद शरीर-तापके अनुसार गरम, सेर-डेढ़-सेर पानीका एनिमा दिया जाता। ज्वर जब १०३ से अधिक हो जाता तब भी आध घंटेके लिए पेड़ूपर मिट्टीकी पट्टी रखी जाती, इससे बड़ा आराम मालूम होता और ज्वर डेढ़-दो डिग्री जरूर कम हो जाता।

एनिमासे मेरे पेटसे शुरूके पांच-सात दिनोंमें कोई सेर-डेढ़ सेर पुराना सड़ा बदबूदार मल निकला और बादमें भी कुछ-न-कुछ निकलता ही रहा। एनिमाके पानीमें मलके साथ-साथ सारे चिकित्साकालमें मरे-जीते कोई पैंतीस केंचुए निकले जिनकी

लम्बाइ छः इंचसे एक फुटतक थी। मल और केंचुओंको देखकर तो मैं हैरान हो जाती थी कि इतना मल और इतने केंचुए इस छोटे-से पेटमें कहां बसते थे।

ज्वर ३५ दिन चला। वह बराबर १०३°से १०४°तक रहा। कभी-कभी १०५° और १०६° तक पहुंच जाता था। इतना ज्वर देखकर मेरे घर और पीहरवाले बहुत घबराते थे। वे घबराकर दवा दिलवानेकी सोचते थे, पर यह देखकर कि अधिक ज्वरकी अवस्थामें भी मेरे होश-हवास दुरुस्त रहते हैं और मैं सिवा कमजोरीके किसी तरह की पीड़ाका अनुभव नहीं करती, प्राकृतिक चिकित्साको ही अंततक आजमानेका निर्णय करते थे।

आखिर ३६वें दिन ज्वर उतरना शुरू हुआ और ४०वें दिन वह बिल्कुल उतर गया। अब मुझे पथ्य मिला। कोई दो छटांक तरोईकी तरकारीका पतला रस। दूसरे दिन कोई दो छटांक लौकीकी तरकारी भी दी गई। तीसरे दिन यह तरकारी दो बार दी गई। और चौथे दिन मुझे तरकारीके साथ थोड़ा पतला दलिया भी मिला। धीरे-धीरे मैं साधारण भोजनपर आ गई और आपको सुनकर आश्चर्य होगा कि पथ्य लेनेके पंद्रह दिनके अंदर ही मेरी कमजोरी जाकर धीरे-धीरे मैं अपना साधारण काम करने लगी। सोचती हूं, कहां तो एक बारका मीयादी बुखार मेरे छः महीने ले लेता था और कहां मैं बीमारीके पंद्रह दिनोंके बाद ही काम करने लगी ! मेरा स्वास्थ्य बहुत शीघ्रतासे उन्नत हुआ। पुराना आलस्य चला गया। हर तरहकी शारीरिक और मानसिक स्फूर्तिका अनुभव करने लगी। मैं रोगसे ही मुक्त नहीं हुई, स्वस्थ रहनेकी विधि भी सीख गई। आज चिकित्सा कराये मुझे आठ साल हो गये पर मुझे कभी कोई ऐसी बीमारी नहीं हुई कि मुझे लेटना पड़ता। कभी कोई जरा-सी भी तकलीफ या बेआरामी

मालूम हुई तो एक-दो दिनका उपवास कर लिया और मैं ठीक हो गई। मैं सोचती हूं इन आठ सालोंमें कम-से-कम दो सालका समय तो प्राकृतिक चिकित्साने मेरा बचाया ही, धनकी जो बचत हुई वह अलग।

—श्रीमती सरस्वतीदेवी पांडेय

: ३१ :

भगंदरसे छुटकारा

मुझे भगंदर हो गया था, संभवतः यह मेरे कड़े कब्जके कारण था। जब कब्ज अधिक बढ़ जाता तो मेरे गुदाद्वारसे एक इंचकी दूरीपर कुछ सूजन हो जाती जो कब्ज दूर होनेपर चली

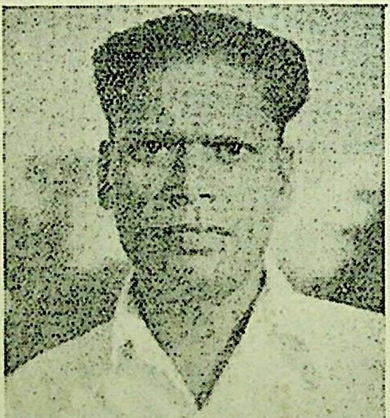

लेखक

जाती। एक साल इस प्रकार चलनेके बाद एक बार सूजन कई दिनतक चली, फिर सूजन फोड़ेकी तरह फूट गयी और उससे

बहुत-सा मवाद और खून निकला। मैंने इसे मामूली फोड़ा समझा पर जब महीनों बीत जानेपर भी घाव न भरा तो मुझे परेशानी हुई। यों भी परेशानी कुछ कम न थी, कपड़े हमेशा मवादसे तर हो जाते और मैं दिनभर अस्वच्छता और अपवित्रताका अनुभव करता। भोजनके समय तो अपनी अस्वच्छताकी बात सोचकर तबियत बहुत घबराती। घाव हो जानेपर भी सूजनके दौरे कभी-कभी होते रहते और उस समय मेरी पीड़ा और बढ़ जाती।

इस समय मुझसे मिलनेवाले एक सज्जनने मुझे कटिस्नान लेनेकी राय दी। यह मैं अधिक कष्ट होनेपर लेता जिससे सूजन शीघ्र चली जाती पर घावपर प्रभाव न पड़ता। पड़ता कैसे, कटिस्नानके साथ मैंने भोजनमें कोई परिवर्तन नहीं किया था। मैं सुबह एक हलवाईकी दूकानपर जाकर पूरी, कचौरी और मिठाइयोंका नाश्ता कर आता, दोपहरको दालभात और मसालेदार सब्जी खाता। शामको मिठाइयोंका नाश्ता करता और रातको दोपहरवाला भोजन करता। तेल मुझे बहुत प्रिय था अतः तरकारियां तेल और मसालोंसे तर रहतीं। आज समझता हूं कि मेरा भोजन कितना रोगकारक था, मेरे भोजनमें फल-तरकारियां तो थीं ही नहीं और जो था वह कितना विकृत था। फिर मुझे कब्ज होकर भगंदर न होता तो किसको होता।

कटिस्नानसे लाभ न होनेपर मैं एक अच्छे वैद्यजीकी शरण गया। उन्होंने अनेक दवाइयां दीं। जिन्हें मैंने महीनों खायीं पर कोई लाभ नहीं हुआ। डाक्टरोंके पास मैं गया नहीं; क्योंकि डाक्टरोंसे परिचित मेरे मित्र बताते थे कि वहां मेरे लिए केवल चाकू है जिससे मैं बहुत डरता था। लोग चांदसी डाक्टरोंसे

मिलनेकी राय देते थे पर उनकी चिकित्साका तरीका मुझे बहुत गंदा लगता था। अतः मैं और मेरे साथ मेरा रोग चलता रहा।

कुछ दिनों पश्चात् मुझे जिन सज्जनने कटिस्नान लेनेकी राय दी थी उन्होंने आरोग्य-मंदिर जानेकी राय दी। मैंने वहांसे पत्र-व्यवहार किया और वहांसे यह आश्वासन पानेपर कि मेरा रोग बिना आपरेशनके चला जायगा मैं वहां चिकित्साके लिए चला गया। इस बीच मैंने प्राकृतिक चिकित्सासंबंधी बहुत-से साहित्यका भी अध्ययन कर लिया था अतः प्राकृतिक चिकित्सापर मेरी आस्था बढ़ गयी थी और उपवासपर तो मेरा बहुत बड़ा विश्वास था।

जब मैं आरोग्य-मंदिर पहुंचा तो मेरी हालत ज्यादा खराब थी, अब घाव अधिक गहरा और चौड़ा हो गया था, मवाद तो निकल ही रही थी, पीड़ा भी अधिक थी। चिकित्सकने मेरी परीक्षा करनेके बाद मेरे लिए उपवास निश्चित किया। मैंने उपवास शुरू किया। तीन-चार दिनमें ही पीड़ा बंद होनेपर और एक सप्ताहमें ही घावसे मवाद आना रुकनेपर मुझे बड़ी खुशी हुई। दूसरे सप्ताह तो घाव बिलकुल लाल होकर भरने लगा और मवादकी जगह थोड़ा पानी आता और तीसरे सप्ताह घाव बिलकुल भर गया। उस समय मेरी खुशीका ठिकाना न था।

उपवास मैंने जब शुरू किया उस समय मैं अपनी सफलताके प्रति शंकाशील अवश्य था पर जब मैं यहां आये सभी रोगियोंसे धीरे-धीरे मिला और उनके लाभकी बात जानी तथा मेरे पहले आये कई उकवत (एक्जिमा), मधुमेह (डाइबीटीज), संग्रहणी, दमे, गैस्ट्राइटिस और पुराने आंवके रोगियोंको अच्छा होकर जाते

देखा तो मुझे बहुत ढाढ़स बंधा और मेरे पूर्ण स्वस्थ होनेकी बात मेरे मनमें जम गयी।

उपवासमें मैं केवल जल पीता। डेढ़-दो घंटेपर एक पाव पानी पीकर दिनभरमें डेढ़-दो-सेर पानी पी डालता। पानीमें दो-तीन बार पानीका स्वाद बदलनेके लिए थोड़ा-थोड़ा नीबूका रस मिला लेता।

उपवासमें मुझे पहले सप्ताह तो कुछ कमजोरी अवश्य मालूम हुई पर दूसरे सप्ताह ही मेरे शरीरमें अजीब स्फूर्ति आ गई। मैं मजेमें सुबह-शाम एक-एक मील टहलता। अपने सारे काम स्वयं करता। मजेसे लोगोंसे बातें करता और कुछ खेलता।

तीसरे सप्ताहमें यह शक्ति और बढ़ी। शक्ति अनुभव होनेका कारण संभवत: चिकित्सा थी। मैं सुबह-शाम पांच-पांच मिनटका कटिस्नान लेता और उसके बाद थोड़ा टहलता। रोज डेढ़-दो-सेर गुनगुने पानीका एनिमा लेता और रोज दोपहरको एक दिन मुझे मालिश दी जाती तथा दूसरे दिन गरम ठंडा कटिस्नान कराया जाता।

एनिमा भी गजब चीज है। एनिमा लेनेपर पता नहीं कहांकी गंदगी पानीके साथ मिलकर नित्य निकलती। कुछ मलके कड़े-कड़े बदबूदार टुकड़े भी निकलते। जिन्हें देखकर हैरानी होती। कहां ये आंतोंमें चिपके हुए थे जो अब निकल रहे हैं। यह सड़ा मल मेरे शरीरमें सड़न न पैदा करे तो और क्या करे?

उपवासके पहले सप्ताहमें मेरी जीभ बिलकुल सफेद हो गयी थी और मुंहका स्वाद बहुत ही खराब हो गया था। पर धीरे-धीरे तीसरे सप्ताहके अंतमें मुंहका स्वाद एकदम ठीक हो गया और जीभ बिलकुल गुलाबी हो गयी।

पहले सप्ताहमें मुंहसे और नाकसे भी पानी निरंतर निकलता रहता था, वह भी धीरे-धीरे उपवासके अंतमें बंद हुआ।

उपवासके बाईसवें दिन मुझे सुबह-दोपहर-शामको एक-एक मुसम्मीका रस मिला। दूसरे दिन इन्हीं समयोंपर तीन-तीन मुसम्मीका रस और तीसरे दिन सुबह-शाम तीन-तीन मुसम्मीका रस और दोपहरको एक सेब खानेको दी गई। चौथे दिन सुबह-शाम मुसम्मी और सेब तथा दोपहरको उबली हुई एक पाव सब्जी दी गई। यह क्रम एक सप्ताह चला और उपवास शुरू करनेके तेंतीसवें दिन मुझे सुबह-शाम फल तथा दोपहरको एक पाव सब्जी तथा एक फुल्का दिया गया और चौंतीसवें दिन मुझे सुबह फल तथा दोपहर-शाम रोटी-सब्जी मिली।

एनिमा मुझे फलाहारके दिनोंमें भी लेना पड़ा पर रोटी लेते ही सुबह-शाम खुलकर शौच आने लगा।

फलाहारके दिनोंमें ही मैं अपनेमें पूरी शक्तिका अनुभव करने लगा था, रोटी खानेपर तो लगा कि इतनी शक्ति मेरे शरीरमें कभी थी ही नहीं।

उपवासके अंतिम दिनोंमें भगंदरके स्थानपर दस मिनटके लिए धूप दी जाती जिससे वहांका मुलायम चमड़ा स्वाभाविक पुष्ट हो गया।

मैं आरोग्य-मंदिरमें कुल चालीस दिन रहा और भगंदरसे मुक्ति पाकर तथा स्वस्थ रहनेकी कला सीखकर घर आया।

अबतक मैं अनेक ऐसे भगंदरके रोगियोंसे मिल चुका हूं जिन्होंने भगंदरका आपरेशन कराया है और अब भी भगंदरसे पीड़ित हैं। शायद मैं आपरेशनसे अच्छा हो जाता पर स्वस्थ रहनेकी कला बिना प्राकृतिक चिकित्सालयमें रहे सीख ही नहीं सकता था।

—श्री विश्वनाथ प्रसाद

: ३२ :

विविध

दिनमें सात बजेका समय होगा, पासके ईंटोंके भट्ठेका रखवाल एक मिट्टी ढोनेवाली मजदूर लड़कीका हाथ पकड़े लाया। लड़की रो रही थी। मैंने समझा कि किसीने इसे मारा है, उसीकी फरियाद लाया है। दरियाफ्त करनेपर मालूम हुआ कि लड़कीको किसी आदमीने नहीं बल्कि बिच्छूने डंक मारा है, बाएं हाथकी कानी (कनिष्ठिका) अंगुलीके बिल्कुल सिरेपर। पर पीड़ा व्याप रही थी उसके सारे शरीरमें। उस आदमीने कहा, बाबू, 'एके बिच्छी मरले बा, कौनो दवाई हो तो दे देईं।' मैंने बैठानेको कहा। तीन-चार सेर साफ मिट्टी मंगवाकर सनवाई। लड़कीको वहीं पक्केपर लिटा दिया। सनी हुई मिट्टीकी एक तह नीचे बिछवाकर उसके ऊपर उसका पूरा बायां हाथ फैलाया और ऊपरसे पूरे हाथपर मिट्टी छोप दी गई। दो-तीन मिनटके बाद मैंने पूछा, दर्द कम हुआ? लड़की रोती हुई बोली, 'ऊ बिछिया मार नाहीं गईल, एहसे करकत बा (वह बिच्छी मारी नहीं गई इसलिए कड़क रही है)। देहाती समझ है कि जो बिच्छू डंक मारे उसे मार डालना चाहिए, तो जहर कम चढ़ता है। मैंने लड़कीसे कहा कि इस मिट्टीमें जादू है, देखो अभी जहर उतारती है। दस मिनटके बाद उसके रोनेमें कुछ कमी हुई। मैंने पूछा, अब क्या हाल है? बोली, 'अबहिंन रेंगत बा' (अभी रेंग रही है)। मुझे इससे अंदाज मिला कि आधा दर्द जाता रहा है। फिर नई मिट्टी बदल दी।

अब लड़कीका रोना बिलकुल खतम हो चुका था और उसकी कुछ सोनेकी प्रवृत्ति थी। सिरहाने एक टाट रख दी गई, जिसपर सिर रखकर उसने आंखें बंद कर लीं। पंद्रह मिनट बाद फिर

मिट्टी ढोनेवाली मजदूर लड़की

नई मिट्टी बदल दी। इतना करनेमें कुल घंटा सवा घंटा लगा होगा। लड़कीने आंखें खोलीं और पूछा, 'जाईं ?' (जाऊं) मैंने कहा, दर्द न हो तो जाओ। उठी और हाथ सामने करके जानेको तैयार हुई। मैंने कहा, हाथ क्यों सामने कर रक्खा

है, दूसरे हाथकी तरह लटकानेमें कोई कष्ट होता है ? बोली, कुछ नहीं। मैंने कहा, तब दूसरे हाथकी तरह लटका लो और दोनों हाथ हिलाती अपने कामपर चली जाओ। यही किया उसने।

जिस मिट्टीने मुझे हमेशा ही सफलता और संतोष दिया है आज ही वह व्यर्थ क्यों होती ?

आरोग्य-मंदिरमें तो मैं मिट्टीके चमत्कार रोज ही देखता हूं। लेकिन वहां तो अधिकांश डाक्टर-वैद्योंसे निराश हुए मंद-जीर्ण (Chronic) रोगोंके रोगी ही आते हैं, उनपर मिट्टी, धूप, हवा, पानी, भोजन, उपवास, मालिश आदि कई अस्त्रोंका उपयोग होता है, इसलिए ठीक पता नहीं चलता कि इनमेंसे किस अस्त्रने रोगको दूर करनेमें कितना काम किया। पर जहां मिट्टी-ही-मिट्टीका उपयोग करके फायदा उठाया गया हो तो उसीकी महिमा मानी जायगी।

मैंने बहुत अवसरोंपर खालिस मिट्टीका उपयोग करके लाभ पाया है—कब्जपर, सूजनपर, दर्दपर, किसी जीवके डंक मारनेपर, फोड़ेपर, फुंसियोंपर। इच्छा होती है जिन-जिन रोगोंपर प्रयोग किया है उनमेंसे प्रत्येकके उदाहरण दूं, पर पहले इस विषयपर लिख चुका हूं और आगे भी लिखना ही है, न मिट्टी कहीं जाती न मैं ही अभी मिट्टीमें जाता हूं। इसलिए आज अधिक उदाहरणोंसे लेखको लंबा नहीं करूंगा।

लेकिन एक नए उदाहरणका लोभ तो नहीं छोड़ सकता। कलकत्ताके प्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक श्रीकुलरंजन मुखोपाध्यायकी—जो कलकत्ता मारवाड़ी-रिलीफ-सोसाइटीके प्राकृतिक चिकित्सा-विभागके मुख्य चिकित्सक भी हैं—बहन

श्रीमती सावित्री देवी अपने पतिके साथ यहीं रहती हैं। बहनपर भी भाईके प्राकृतिक चिकित्सक होनेका असर खूब पड़ा है। वह

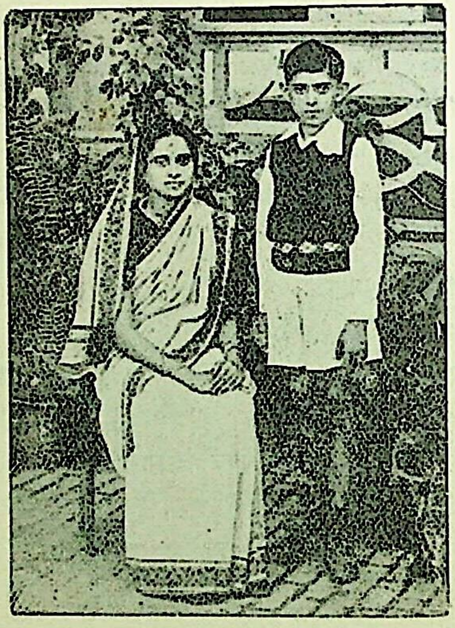

श्रीमती सावित्रीदेवी और रंजन

अपने और अपने बच्चोंके छोटे-मोटे रोग प्राकृतिक चिकित्साके ही सहारे दूर करती हैं। पिछले दिनों उसके बड़े "रंजन"को मीयादी बुखार हुआ। दौरा हल्का नहीं था। मांका हृदय बच्चेकी कठिन बीमारीसे बहुत घबरा गया था। कभी-कभी श्रीसावित्री देवीका विश्वास डांवाडोल होने लगता। सोचती कि मैं डाक्टर-वैद्यको न बुलाकर सिर्फ मिट्टी, पानीके सहारे लड़केको रखकर कोई अपराध तो नहीं कर रही हूं। कहीं

लड़केको हाथसे न खो बैठूं। एकाध बार कह उठती, "दया करे उचित परामर्श दिवेन (ठीक राय दीजिएगा), आमि पूर्णतः आपनादेर भरसाय आछि (मैं आपलोगोंके भरोसे हूं), आपनारा माथेर हृदय जानेन (आप मांका हृदय जानते हैं) आमार ऐक भाई छपराय एई रोगे मारा पड़ेन (मेरे एक भाई छपरामें इसी बीमारीसे चले गये) ताई आमार हृदय भय पाच्छे (इसलिए मेरा जी डरता है)। बलून, आमार छेले कतदिने आरोग्य हते पारिवे (बताइये मेरा बच्चा कबतक ठीक हो जायगा)।" बावजूद घबराहटके, उपचार जो बताया गया उसमें रत्तीभर भी फर्क नहीं किया उसने, लड़केसे सारे नियम ज्यों-के-त्यों पलवाये। २७ दिनके बुखारमें लड़का सूखकर कांटा हो गया था। लड़केका बुखारके अंतिम दिनोंमें खानेकी कई चीजोंपर मन चलता। एक दिन वह बोली, "दया करे ऐक दिन एसे छेलेरसमुखे जान कि ताके कखन की खेते दिते हवे (आप कृपा करके लड़केको देखकर उसके सामने बतला दीज़िए कि उसे कब क्या खानेको दिया जायगा)।" मैं गया तो लड़का चुप था। वह सशंक था कि क्या यह मेरे खानेकी इच्छाकी पूर्ति करेंगे ? मैंने पूछा, कहो, रंजन, क्या खाना चाहते हो ? उसने मक्खन, दही, किशमिश तथा और कुछ चीजोंपर अपनी इच्छा जताई। मैंने कहा, सब चीजें तुमको बड़ी जल्दी मिलेंगी। किशमिश तो उसी दिनसे देनेको कह दिया। लड़का बहुत खुश हो गया कि उसकी एक मांग तो आज ही पूरी हो गई। मैंने देखा कि मांने लड़केको अवतक कभी कोई बिना बतलाई चीज खानेको नहीं दी थी। एनिमा, स्पंज वगैरह बराबर जारी रखा था। अच्छे होनेके कुछ दिनों बाद उस लड़केको मैंने देखा। मीयादी बुखारके पहले वह जितना तंदुरुस्त था अब उससे अधिक तंदुरुस्त था।

अधिक कमजोरीके कारण लड़केको खाटसे अलग करके टब बाथ नहीं दिया जा सकता था। वह काम पेटपर बराबर मिट्टीकी पट्टीसे ही लिया गया था। रंजन चित्रमें अपनी मांके पास खड़ा है।

लेकिन मिट्टीका खास फायदा तो श्रीसावित्री देवीने स्वयं उठाया।

एक दिन तीसरे पहर अपने पतिके साथ मेरे यहां आयीं। हमेशा खुश रहनेवाली सावित्री आज पीड़ित थी। बोली, मैं कल कलकत्ता जानेको हूं, मेरी मां बहुत बीमार हैं। मैंने समझा कि मांकी बीमारीकी चिंतासे उसका चेहरा उदास है। पर फिर उसने अपने बायें हाथकी कांखके पास पहुंचेपर एक फोड़ा दिखाया। बोली, कल मुझे कलकत्ता तो जाना है और फोड़ेमें बेतरह वेदना है। मैंने पूछा, इसके लिए क्या कर रही हो? बोली, पानीकी पट्टी बांधती हूं। मैंने कहा, मिट्टीको बाँधो। उसने पूछा चिराना तो नहीं पड़ेगा? मैंने कहा, यह कोई नहीं कह सकता पर कुदरतपर भरोसा रखो।

मिट्टीको मौका देकर देखो। जिस रिक्शेपर वह आई थी उसीपर एक छोटे बोरेमें आधा बोरा मिट्टी घर ले गई। संयोगवश दूसरे दिन उसकी मांका कलकत्तामें देहांत हो गया। उसके कलकत्ता जानेकी जरूरत रफा हो गई। तीसरे दिन आदमीसे कहलाया कि मेरा फोड़ा फूटकर साफ हो गया है। काफी बड़ा फोड़ा था और बड़ा दुःखदायी। मिट्टीने उसपर अपना पूरा जौहर दिखाया।

इस लेखका तीसरा चित्र 'ताईजी'का है। 'ताईजी'से एक स्थानीय वैद्यने पूछा, आप भी ताऊजीके मतमें, यानी प्राकृतिक चिकित्साकी माननेवाली हैं क्या? जवाब मिला

'नहीं, मैं इन लोगोंकी सब बातें नहीं मानती, लेकिन दवासे तो मुझे बचपनसे ही नफरत है। इन लोगोंसे इतना मैंने जरूर जान लिया है कि शरीरमें कुछ खराबी दिखाई दे तो खाना तुरंत बंद कर देना चाहिए। दूसरी बात, कहीं दर्द हो तो मैं

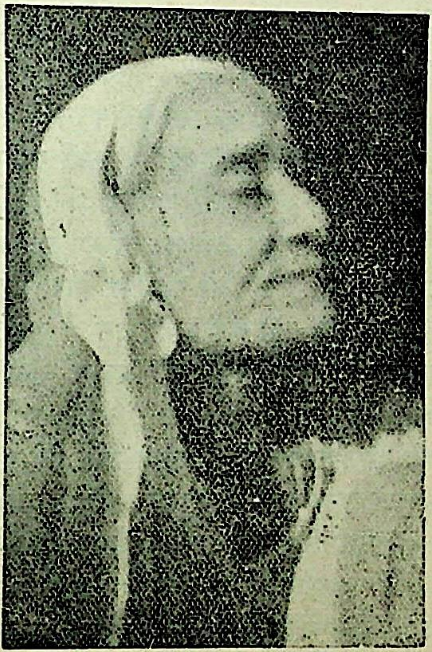

ताईजी

गर्म पानीकी थैलीका इस्तेमाल करती हूं, इससे बहुत राहत मिल जाती है।' वैद्यने कहा, यह तो हम लोग भी बतलाते हैं। 'ताईजी' बोलीं, 'आप लोग भी बतलाते होंगे, गरम पानीपर किसीका इजारा थोड़े ही है। हां, इन लोगोंकी एक चीज जो मुझे ज्यादा

पसंद है, वह मिट्टी है। यह कई चीजोंपर चलती है।' वैद्यजीको मिट्टीके गुणोंका पता नहीं था। पूछने लगे, मिट्टीका प्रयोग ये लोग किन-किन बीमारियोंमें करते हैं? 'यह मत पूछिये, ये लोग मिट्टीके पीछे पागल रहते हैं। यों तो इन्हें मैं बड़ा पागल गिनती हूं, जिस चीजके पीछे पड़ते हैं पागलकी तरह लगते हैं, आगे-पीछे कुछ देखते ही नहीं। लोभी जैसे मानता है कि "सर्वे गुणाः कांचनमाश्रयन्ते"—सोनेमें सारे गुण देखता है वैसे ही ये लोग मिट्टीमें सब रोगोंको दूर करनेकी शक्ति मानते हैं। मैं इनकी बड़ी-बड़ी डींगोंकी बात तो नहीं समझती लेकिन कई तरहके दर्द, फोड़े, फुंसी, कटे, जलेपर मैंने मिट्टीका फायदा देखा है। उस दिन रातको खौलते दूधका 'टोपिया' नौकरके हाथसे छूट गया। दूध मेरे दोनों पांवोंपर गिरा। पांव जल-से उठे। कुछ न सूझा कि क्या करूं। वह पास ही कुर्सीपर बैठे थे। उस नौकरको दूध गिरनेके लिए तो कुछ न बोले, पर जोरसे डपटकर कहा, दौड़कर मिट्टी सानकर ला। दो-तीन मिनटके अंदर ही वह दो-तीन सेर मिट्टी लाया और मेरे दोनों पैरोंपर खूब मोटी-मोटी लगा दी। पंद्रह मिनटके बाद दूसरी बदल दी गई। यह भी पंद्रह-बीस मिनट रही होगी। उन्होंने तो कहा, एक पट्टी और बदल लो, बांधे-बांधे सो जाओ, आंख खुले तब उतार देना। पर मुझे बहुत भारी लग रही थी, इसलिए मैंने पट्टी उतार दी। मुझे शंका थी कि फफोले पड़ेंगे, क्योंकि जलेपर मैंने कभी मिट्टी लगाते नहीं देखा था। पर सुबह मैंने देखा कि पैरमें कोई फफोला नहीं पड़ा। मिट्टीकी तो मैं भी कायल हूं।

टब बाथ भी मैंने कभी-कभी लिया है, लेकिन ठंडे पानीमें मैं कांपने लगती हूं, इसलिए उसके उपयोगकी मैं हिम्मत नहीं करती।'

सूरदास कहते हैं:—

'यशोदा देख्यो कृष्णहिं माटी खात'

कृष्ण कुछ समझकर ही मिट्टी खाते होंगे। पर कृष्णकी देखा-देखी हम मिट्टी खाने लगें तो हानि उठायेंगे। बड़ोंकी रीस—देखा-देखी करनेमें नुकसान होता है। बड़े जो करें वह न करके जो वह कहें सो करना चाहिए। हमें तो मिट्टी लगाकर ही संतोष करना चाहिए।

'मारूफ' नामके एक उर्दू कविने मिट्टीके बखानमें एक उम्दा शेर कहा है, जो पाठकोंकी नजर है—

यह आदमी जो, है इसका तन बदन मिट्टी,
जो चाहता है बने आदमी, तो बन मिट्टी।

—श्रीआनंदवर्धन

(२)

मिट्टीमें भी इतने गुण हो सकते हैं इसका मुझे खयाल ही नहीं था। कभी मित्रोंसे इसकी गुणावली सुनता भी तो विश्वास नहीं जमता। पर "आरोग्य" में मिट्टीके गुण पढ़ते-पढ़ते कुछ-कुछ विश्वास पैदा होने लगा। मैंने अपने घरमें मिट्टीका प्रयोग शुरू किया। मिट्टीके बारेमें आजतक जैसा पढ़ा-सुना था, लाभ उससे अधिक मिला। आज तो इस मिट्टीकी कृपासे मेरे घरसे रोग एक तरहसे बिदा हो गए हैं। डाक्टरोंसे भी पीछा छूट गया है। रोजाना उनकी फीस और दवाईके बिल चुकानेमें पैसा खर्च होता था वह बच रहा है और जब घरमें बीमारी नहीं तो फिर चारों ओर आनंद-ही-आनंदका अनुभव होता है।

मेरी स्त्रीका सिर बराबर दुखा करता था और गरम भी

रहता था। डाक्टरों और वैद्योंसे काफी इलाज करवाया, पर कोई लाभ न हुआ। वैसे कई बार इसके लिए मिट्टीके प्रयोगका विचार किया पर प्रयोगमें विश्वासकी कमीके कारण विचार टलता गया। आखिर एक रोज दृढ़ निश्चय करके मिट्टीकी पट्टीका प्रयोग किया। बंबई-जैसे शहरमें मिट्टीका मिलना भी तो आसान नहीं था। हमारा एक भैया (दरबान) गांवमें रहता था। हमने उससे रोज थोड़ी मिट्टी लानेको कहा। उस मिट्टीको ठंडे पानीमें सानकर कोई आधसेरकी मात्रामें ठंडी-ठंडी माथेपर रखने लगे। इससे बीस दिनमें सिर दुखना बंद हो गया और सिरकी गरमी भी बिलकुल चली गई। तबियत खुश रहने लगी। अब मिट्टीपर मेरा विश्वास बढ़ा। मेरी पत्नीका पेड़ू भी भारी रहता था। उसपर भी मैंने वैसे ही मिट्टी-की पट्टी रखनी शुरू की। इससे उस भारीपनमें भी कमी आई।

आश्चर्य तो मुझे तब हुआ जब मेरी स्त्रीके पैरका दर्द डाक्टरकी दवाईसे और घरेलू मालिश वगैरहसे न जाकर ठंडी गीली मिट्टीके लेपसे चला गया। वह दर्द अचानक बाएं पैरमें घुटनेसे लेकर जंघातक पैदा हो गया था। दर्द बहुत जोरका था। इसके लिए नारायण तेलकी मालिश की पर कुछ फायदा न हुआ तो डाक्टरके पास पहुंचे। उसने कोई जहरीला तेल मालिशके लिए दिया मगर दर्द बजाय घटनेके बढ़ने लगा। इस समय मिट्टीके प्रयोगका विचार आया। मगर सोचा यह तो ठंडी होती है, शायद ठंडसे दर्द बढ़ जाय। पर जब तकलीफ भोगते एक सप्ताह हो गया और दर्द किसी तरह न गया तब हारकर एक दिन मिट्टीकी पट्टी चढ़ाई। यह प्रयोग रातको सोते वक्त किया था। दूसरे दिन सबेरे दर्दमें बारह आना कमी थी।

फिर क्या था, दूसरे दिन फिर पट्टी चढ़ाई गई। इस दूसरे प्रयोगसे दर्द कतई नहीं रहा।

मेरे बंगलेके दरबान बंशीधर शुक्लको एक दिन कै और दस्त होने लगा। बंबई-जैसे शहरमें पड़ोसी इसे बरदाश्त नहीं कर सकते और न छिपा सकते हैं। ऐलान हो गया शुक्लको हैजा हो गया है। लोग कहने लगे अस्पताल भेज दो। शामको छः बजे मैं आफिससे लौटा तो कुल किस्सा सुना। मैंने तुरंत सलाह दी कि मिट्टीकी पट्टी पेटपर रखी जाय। ऐसा ही किया गया। कोई बीस-बीस मिनटके अंतरपर बदल-बदलकर तीन पट्टी रखी गई। कै और दस्त तो पहली पट्टीसे ही बंद हो गए। मगर तीसरी पट्टीके बाद तो बंशीधर शुक्ल हंसने लगा और खड़ा होकर मेरे पास आया और बोला कि मुझे भूख लगी है। मैंने उसे कलतक कुछ न खानेको कहकर विदा किया।

हमारे भवानी-भवन बंगलेपर मल्लू सिंह राजपूत रहता है। उसको मलेरियाने आ घेरा। डाक्टरसे हाथमें इंजेक्शन लिया, जिससे उसका हाथ सूज गया और टेढ़ा हो गया। दर्द तो बढ़ा हुआ था ही। मैंने उसको मिट्टीकी पट्टी चढ़ानेकी सलाह दी। तीन दिनमें ही हाथ सीधा हो गया। दर्द चला गया। बुड्ढा खुश हो गया। बिना पैसा खर्च किए बिना तकलीफसे ऐसा फायदा! वहां रहनेवाले सभी लोगोंको आश्चर्य हुआ। अब तो वह जरा ही शिकायत होनेपर मिट्टीका ही प्रयोग करता है और मैं भी अपने आपको एक छोटा-मोटा डाक्टर मानने लग गया हूं। मुझमें इस बातका विश्वास पैदा हो गया है कि इस मिट्टीके प्रयोगसे सब बीमारियां अवश्य ठीक हो सकती हैं, शर्त है समझकर प्रयोग करनेकी।

—श्रीश्यामदेव देवड़ा

(३)

लोग बटाऊ—राह चलतों तकसे अपना इलाज पूछते हैं, फिर मुझसे न पूछें यह कैसे संभव था, जब कि वे जानते थे कि मैं एक प्राकृतिक चिकित्सालय चलाता हूं। जेल जाकर मैं बहुत चाहता तो नहीं था कि वहां इन अड़ंगोंमें पड़ूं, पर संसारमें केवल अपनी चाही होती ही कहां है। दो-चार दिन ही बीते होंगे कि पूछताछ शुरू हुई, "हमें यह रोग है, क्या करें, उन्हें वह है तो क्या करें।" मैंने जेलमें जो कुछ हो सकता था तदनुसार उपचार बताना शुरू किया। बाहर तो और चीजें भी मिल जाती हैं पर जेलमें सुलभतासे मिट्टी ही मिल सकती है, इसलिए पहले उसीकी ओर निगाह गई। बाहर चिकित्सालयमें एक साथ बहुत-सी चीजें चलनेके कारण मिट्टीके जौहर देखनेके अवसर कम मिलते हैं पर जेलमें तो वह खूब देखनेको मिले।

(१) एक भाई स्वप्न-दोषसे सताये हुए थे। जेलमें चौदह महीनोंसे थे और आनेके चार महीने बादसे प्रायः नित्य स्वप्न-दोष होता था उन्हें। उनके रोगकी बात सारा बैरिक जानता था। लोग कुशलक्षेमकी तरह सबेरे उनसे पूछते, "रात कैसी रही?" और वह मुंह लटका लेते। कोई कुछ बता दे, करनेको तैयार, खानेको तैयार, जो दवा दी खाई। जेलरतकने उनपर अपनी दवा आजमाई। इमलीके चीयें (बीज) मंगाये, उनकी गुद्दी दूधमें पकाकर पाक बनवाया। चालीस दिन खाया, पर व्यर्थ। सिविल सर्जन साहब भी हार मान चुके थे। कह दिया था, रोज सबेरे दौड़ा करो, अच्छे हो जाओगे। कमजोरीकी शिकायत करनेपर दूध बढ़ा देते थे। मुझसे उन्होंने पूछा—"क्या मैं अच्छा हो सकता हूं?" मैंने कहा "जरूर"। पर ऐसे आश्वासन वह बहुत पचा चुके थे। इस कथनसे उनके मनमें

कोई आशा न जागी। उन्होंने कहा "अच्छा! आप यह बताइए कि क्या करूं?" मैंने बतलाया सेर-डेढ़-सेर साफ मिट्टी ठंडे पानीसे भिगोकर हलुआ-सरीखा बनाकर पेड़ूपर रातको सोते समय बांधना और सबेरे उठनेपर या बीचमें नींद खुलनेपर उसे हटा देना। इस प्रयोगसे तीन दिनतक उन्हें स्वप्न-दोष नहीं हुआ, किंतु इससे उन्हें कोई विशेष प्रसन्नता नहीं हुई। पर चौथे दिनसे बहुत खुश थे। पर छः दिन स्वप्न-दोष रुककर दो दिन लगातार हुआ तो वह खुशी गायब हो गई। अब मैंने इन्हें खान-पानकी बात बतलाई। दाल-भात बंद, रोटी-साग खाना और मक्खन निकाला हुआ दूध या उसका दही। जेलमें जो दूध मिलता था उसमें मक्खन निकालनेके लिए मथनी खोजनेकी जरूरत नहीं थी। ठेकेदार लाता ही ऐसा दूध था कि जिसमें चिकनाई शायद नामकी ही हो। इस भोजनके सिवा बेलकी दस-पंद्रह पत्तियां पीसकर सबेरे पीनेकी सलाह दी। मिट्टीकी पट्टी तो रही ही। लगातार दस दिनतक उन्हें स्वप्न-दोष नहीं हुआ। इसी बीच उनकी रिहाई आ गई। संभव है बाहर इसी इलाजपर चलकर उन्होंने रोगसे रिहाई पाई होगी।

उक्त भाईको स्वप्न-दोषमें लाभ होते देखकर और अनेकोंने भी पेड़ूपर मिट्टीकी पट्टी बांधनी शुरू की। लोग रातको अपनी थालियोंमें मिट्टी लाकर रख लेते थे और ९-१० बजे बांधकर सो जाते थे। पाठक सुनकर ताज्जुब करेंगे कि बाहर तो धन-दौलतकी चोरी होती है पर यहां एक दूसरेकी मिट्टी चुरानेमें भी न चूकते थे।

(२) एक नवयुवक खांसीके मरीज थे। रातको जो खांसी चलती तो रुकनेका नाम न लेती। इसकी वजहसे औरोंको भी बड़ी परेशानी थी। मैंने इन्हें भी पेड़ूपर मिट्टीकी पट्टी रखनेको

कहा, तो ये समझे कि मैं मजाक कर रहा हूं, कहने लगे "मैं आपसे गलत नहीं कह रहा हूं, मुझे स्वप्न-दोषकी शिकायत बिल्कुल नहीं है।" मैंने कहा, "तो मैं कहां कहता हूं कि आपको स्वप्न-दोषकी शिकायत है, मैंने आपकी खांसीके लिए ही मिट्टी बताई है।" वह आश्चर्यसे बोले, "स्वप्न-दोषमें मिट्टीकी पट्टी पेड़ूपर रखना समझमें आता है, पर खांसीमें भी पेड़ूपर मिट्टीकी पट्टी?" मैंने कहा रोगोंका आरंभ तो आंतोंसे ही होता है, उसीकी चिकित्सा है यह। आपका पेट साफ होने लगेगा, आंतोंकी गरमी कम होगी, विकार निकलेगा और जो विकार यों न निकल सकनेके कारण खांसीके रूपमें मुंहसे निकलनेका प्रयत्न कर रहा है उसे रास्ता मिल जानेपर आपकी खांसी जाती रहेगी। वह समझ गये। पांच-सात दिनमें ही उन्हें लाभ प्रतीत हुआ। दस-पंद्रह दिन बाद उन्हें इस प्रयोगकी जरूरत नहीं रही।

(३) इन भाईको दस वर्ष पहले उपदंश हुआ था। कहने लगे, मैंने इसकी चिकित्सा की, पर मेरा खून अभी साफ नहीं हुआ है। मुझे दो-तीन वर्षपर गुदाके पास एक फोड़ा होता है जो महीनों लेकर जाता है। बड़ी देरमें पकता है, चीरे जानेपर भरनेका नाम नहीं लेता, वैसे ही फोड़ेकी शुरुआत दो सप्ताहसे हो रही है। डाक्टर रोज ही प्लास्टर बांधता है पर वह सूजता ही जाता है, यही हालत रही तो मुझे उसका आपरेशन कराना पड़ेगा। किसी तरह यह आफत टल जाती तो अच्छा होता। इन्हें बताया कि आपका खून तो साफ, महीनों फल, दूध तथा तरकारियोंपर रहनेसे होगा, जिसकी सुविधा तो बाहर ही हो सकती है, पर यहां आप मिट्टीकी पट्टी जहां फोड़ा हो रहा हो, दिनमें तीन-चार बार घंटे-घंटेभरके लिए बांधिए, इससे आपका

फोड़ा दबना चाहिए। प्रयोग करके पांच-छः दिन बाद उन्होंने बतलाया कि कुछ कम जरूर हुआ है, पर बहुत नहीं। तब मैंने फोड़ेपर दिनमें एक बार बीस मिनटतक भाप देने और उसके बाद मिट्टी बांधनेकी बात बताई। किया उन्होंने, और एक सप्ताहके बाद वे बिल्कुल ठीक हो गये।

(४) ये दोनों पैरोंपर उकवत (एक्जिमा) के मरीज थे। ठेहुनेसे लेकर नीचे अंगुलियोंतक पैर खराब हो रहा था। मैंने उनसे भी कहा कि यहां तो मिट्टी ही है। दिनमें दो बार पैरोंपर मिट्टीका लेप कीजिए, लाभ होगा। बन सके तो नमक भी छोड़ दीजिए और दाल भी। पांच-सात दिन बाद वे फिर आये। रोगमें विशेष फर्क नहीं था, पर वे कहते थे कि इतना फायदा तो अबतक किसी भी दवाने नहीं किया था। मैंने उन्हें बतलाया कि आपके रोगकी जड़ तो आपके रक्तमें है, मिट्टी ऊपरी जहरको खींचकर साफ कर देगी। पर जबतक रक्त साफ नहीं होगा तबतक यह रोग जायगा नहीं। उन्होंने कहा, साहब, देखा जायगा जब जड़ जायगी; आज तो खाज नहीं आती, नींद ठीक आ जाती है इतना ही क्या कम है।

(५) इनके शरीरकी सारी ही त्वचा सूखी रहती है, मोटी हो गई है, खाज आती रहती है। इन्हें सारे बदनमें मिट्टी लगाकर धूपमें आध घंटे रहनेके बाद स्नान करनेकी हिदायत की। वह इसे पांच-सात ही दिन कर पाए। बाकी सब ज्यों-का-त्यों था पर खाजमें कमी हो गई थी।

(६) एक बिल्कुल अपरिचित भाई एक दिन आकर कहने लगे, मेरे पेटमें जलन और सिरमें दर्द होता रहता है। आंखोंपर भी गर्मी बनी रहती है। सबेरे तो कुछ पेट साफ हो जाता है पर शामको तो दस्त होता ही नहीं। कोई सरल प्रयोग

बतावें। मैंने इन्हें हाथ-मुंह धोकर सबेरे दस-पंद्रह बेलकी पत्ती चबानेको कहा और रातको मिट्टीकी पट्टी पेड़ूपर रखनेको। पंद्रह ही दिनमें उनकी सभी व्याधियां चली गईं। मिले तो बोले, "मिट्टीकी पट्टी मैंने रखनी बंद कर दी है पर बेलकी पत्ती अब भी चबाता हूं। और सब ठीक है पर अब मुझे सबेरे ही ४ बजे शौचकी तेज हाजत होती है और अड़गड़ा सबेरे छः बजे खुलता है। कैसे रोकी जाय हाजत ?" मैंने कहा इसे रोकनेकी जरूरत ? यह तो जरूरी चीज है। अगर आप हाजतको छः बजे बुलाना चाहते हैं तो दोपहरको आप भोजन अब जिस समय करते हैं उससे दो घंटे बाद कीजिए। सबेरेकी हाजत दो घंटे बाद होगी। यह कहनेपर उन्हें हाजत ४ बजेके बजाय ६ बजे होने लगी।

मिट्टीकी पट्टी और बेलकी पत्तीके अलावा उपवासका भी प्रयोग काम करता है पर एनिमाका सुभीता और लंबा उपवास तोड़नेके लिए फल-तरकारियोंकी सुविधा न होनेके कारण एक दिनसे ज्यादा उपवास किसीको नहीं कराया। इस एक दिनके उपवाससे लोगोंका साधारण जुकाम, हल्का ज्वर, शरीरका भारीपन, तबियतका उचाट आसानीसे चला जाता। जीर्ण रोगी हर चौथे दिन एक दिनका उपवास करते थे और उससे लाभ बतलाते थे।

गरम मिट्टी

दो कैदी आपसमें बेंतकी सजापर बातें कर रहे थे—

"बारह महीनेकी सजा अच्छी पर बारह बेंत नहीं अच्छे।"

"मैं तो बेंत ही पसंद करूंगा, सालभर रोजकी तकलीफसे तो बच जायगा आदमी।"

"आप बेंतकी चोट नहीं जानते, इसीसे बेंतपसंदकी बात करते हैं।"

"एक महीनेके लिए एक बेंत। कितनी ही तकलीफ क्यों न हो, बेंत ही सहना अच्छा है।"

"आप किसीको बेंत खाते देख लेते तो कभी यह न कहते। बताइए तो यहांकी बेंत कैसी होती है? कहीं आप स्कूलके मास्टरवाली बेंत तो नहीं समझ रहे हैं?"

"उससे कुछ ज्यादा मोटी होती होगी और क्या?"

"अरे, कुछ नहीं, बहुत ज्यादा मोटी होती है और इस्तेमाल करनेके बारह घंटे पहले उसे तेलमें भिगो देते हैं और जिसे मारते हैं उसे टिकटीपर बांध दिया जाता है। हाथ-पैर बंधे रहते हैं, चूतड़ खुला रहता है। डोम दस गजकी दूरीसे बेंत भांजता दौड़ता हुआ आता है और पूरी ताकतसे चूतड़पर मारता है, जेल अधिकारी खड़ा देखता रहता है और कहता है "और जोरसे!" डोम और हुमचकर मारता है। कैदी चिल्लाने लगता है, सारा जेल कराह सुनकर कांप उठता है। उस कैदीसे हफ्तों उठा नहीं जाता। पाखाने जाते वक्त प्राण निकलने लगते हैं।"

"सबसे बुरी बात तो यह है कि बेंत खानेके बाद बड़े जोरसे गुस्सा आता है" एक तीसरे भाई बोले।

मैंने पूछा, "किसपर?"

"अपनेपर, और मजिस्ट्रेटसे लेकर मारनेवालों तकपर।"

"यह ज्यादा कष्टका है या मारकी चोट।" पहले भाईने सूत्र पकड़ा।

यह बात हो ही रही थी कि एक भोला-सा देहाती मेरे सामने आकर खड़ा हो गया।

"आप ही कुदरती इलाजके डाक्टर हैं?"

मैंने कहा, "कहो।"

बोला, कहूं क्या, खुद देख लीजिए। उसे कांवरू (पीलिया) हो रहा था। आंखें पीली, सारा बदन पीला। वह पांच-सात दिनमें ही छूटनेवाला था। इस रोगका कोई इलाज जानना चाहता था, मैंने बता दिया। उठा और जाने लगा। दस ही कदम गया होगा कि मैंने उसे बुलाया।

"तुम लंगड़ाते क्यों हो?"

"मुझे चार महीने हुए बेंत लगे थे।"

"कितने?"

"एक दर्जन।"

"और दर्द अभीतक नहीं गया?"

"यहांके डाक्टरने बहुत दवा लगाई, पर दर्द नहीं जाता। दर्दकी वजहसे जमीनपर पैर पूरा नहीं पड़ता। वहां कोई साधन नहीं दिखाई दिया जिससे मैं उसका दर्द खो सकूं। मैंने उसे बिठाया, एक भाईसे दो सेर मिट्टी लप्सी-सी सानकर गरम करके मंगवाई और सुलाकर दर्दकी जगह मिट्टीसे सेंकी और फिर मिट्टी दर्दकी जगहपर चारों ओर फैलाकर बांध दी। एक घंटे बाद मिट्टी हटा दी और यह प्रयोग उसे सुबह-शाम दो बार करनेको बता दिया। उसने शुरू किया। मैं उससे दोनों वक्त पूछता, कुछ लाभ है? वह कहता कुछ कम हो रहा है। चौथे दिन सुबह मैंने अपने अड़गड़ेमें बैठे-बैठे देखा वह मजेमें जेलके आंगनमें लोगोंके साथ तेजीसे टहल रहा है, चलनेमें लंग नहीं है।

मैंने मनमें कहा—

"विष्णुपत्नि (अर्थात् पृथ्वी माता) नमस्तुभ्यं!"

—विट्ठलदास मोदी

प्राकृतिक चिकित्सा क्या है ?

रोज-ब-रोज डाक्टरोंकी तादाद बढ़ रही है और साथ-साथ अनगिनत ओषधियोंकी, पर आंख उठाकर देखें तो हर आदमी आपको किसी-न-किसी रोगके चंगुलमें फंसा मिलेगा। इससे साबित होता है कि दवाएं आदमीको न तंदुरुस्त रख सकती हैं, न कर सकती हैं।

प्राकृतिक चिकित्सकोंने तजुर्बेसे जाना है कि रसायन और दवाएं रोगको अच्छा करना तो दूर रहा उल्टे रोगको—उसके कुछ लक्षणोंको—कुछ वक्तके लिए दूर करके, बाहर निकालते हुए रोगको शरीरके भीतर दबा देती हैं। जैसे गांवमें कूड़ा-कचरा इकट्ठा होकर बीमारी फैलाता है वैसे ही शरीरकी गंदगी निकल न पानेपर अंदर सड़ने लगती है। वही गंदगी सब रोगोंकी जड़ है।

गलत भोजनकी वजहसे पैदा हुई सड़न, अपच, दवाओंके जहर, इंजेक्शन, टीका वगैरह इस गंदगीको बढ़ाते हैं।

शरीरसे गंदगी निकालनेकी कुदरतकी कोशिश ही रोग है, और रोगके लक्षण इस कोशिशका कुदरती नतीजा है। कुदरती इलाज इस गंदगीको शरीरसे निकाल फेंकनेमें पूरी मदद पहुंचाता है और मनुष्यको स्वस्थ, सशक्त एवं सतेज बनाता है।

कुदरती इलाजके मददगार हैं उपवास, फलाहार, संतुलित भोजन, पानी, मिट्टी, धूप, प्राणायाम, आसन, कसरत और मालिश वगैरह। जिनसे रोग दबते नहीं बल्कि जड़से नेस्त-नाबूद होते हैं।

आरोग्य-मंदिर

इन्हीं सिद्धांतोंके अनुसार चिकित्साकी सुविधा देनेके लिए आरोग्य-मंदिरकी स्थापना की गई है। विशेष जानकारीके लिए आरोग्य-मंदिरका परिचय-पत्र मंगानेकी कृपा करें।

प्रबंधक—आरोग्य-मंदिर, गोरखपुर (उ० प्र०)

आरोग्य-ग्रन्थमाला

प्राकृतिक चिकित्साके प्रसारकी दृष्टिसे आरोग्य-ग्रन्थमालाका प्रकाशन शुरू किया गया है। इसमें हिन्दुस्तानके अनुभवी प्राकृतिक चिकित्सकोंकी पुस्तकोंके साथ-साथ विदेशके प्राकृतिक चिकित्सकोंकी पुस्तकें भी होंगी। ये सब हम मूल या सारांशरूपमें हिन्दी-भाषी जनताको अच्छे रूपमें और सुलभ मूल्यमें देना चाहते हैं।

स्वास्थ्य कैसे पाया ? आपके हाथमें है, शेष प्रकाशित पुस्तकोंका परिचय लीजिए :

प्राकृतिक जीवनकी ओर—लेखक—एडोल्फ जस्ट, अनुवादक—श्रीविट्ठलदास मोदी, सम्पादक—'आरोग्य'।

प्राकृतिक चिकित्सा प्राकृतिक जीवनका ही दूसरा नाम है। इस जीवनका वर्णन जस्टने अपनी इस किताबमें कुदरतकी भाषा पढ़-पढ़कर ऐसे कवितामय शब्दोंमें किया है कि जल, वायु, प्रकाश हमें अपने शुभैषी और बांधव प्रतीत होने लगते हैं। हम इनके मित्र रूपको पहचानने लगते हैं और धरती माता जो अपने मिट्टीके हाथ हमारे मिट्टीके शरीरके रोगोंको मिट्टीमें मिलानेके लिए बढ़ाए दिखाई देती है, के चरणोंमें प्रणाम करनेको जी चाहता है। इस पुस्तकको पढ़ना रोग-निवारिणी स्वास्थ्यदायिनी माताकी कल्याणमयी गोदमें अपने और अपने परिवारको निर्भय सौंपना है। तीन सौ पृष्ठोंकी इस पुस्तकका मूल्य है केवल ढाई रुपया।

जीनेकी कला—लेखक—श्रीविट्ठलदास मोदी—क्या आप किसी कामको करनेकी सोचते हैं, और उसे कर नहीं पाते, तो आपको मानसिक शक्तिकी जरूरत है; समस्याएँ और चिन्ताएँ आपको घेरे रहती हैं और आप उससे निकल नहीं पाते, तो आपको विश्लेषणात्मक शक्तिकी आवश्यकता है; बातचीत और अध्ययनमें आपको अच्छे विचार मिलते हैं, पर वे आपको याद नहीं रहते, तो आपको स्मरणशक्ति बढ़ानेकी ज़रूरत

है। ये सभी शक्तियाँ तो आपको 'जीनेकी कला' देंगी ही और आपके सामने उन सारे रहस्योंको खोलकर रख देंगी, जिनके जाननेके कारण ही वह व्यक्ति, जिसे आप वड़ा कहते हैं, वड़ा वना है। इस उपादेय पुस्तकका मूल्य है केवल सवा रुपया।

उपवाससे लाभ—सम्पादक : श्रीविट्ठलदास मोदी । उपवासकी महिमा, उपवास करनेकी विधि और रोगोंके निवारणमें उपवासका स्थान वतानेवाली पुस्तकके रूपमें एक धर्मगुरु। मूल्य डेढ़ रुपया।

रोगोंकी सरल चिकित्सा—लेखक—श्रीविट्ठलदास मोदी । आपको इस पुस्तकमें प्राकृतिक चिकित्साके इतिहास और उसके सिद्धान्तोंका विशद वर्णन मिलेगा तथा रोग और उनकी चिकित्साका सुविस्तृत विवेचन। अनुभवके आधार पर लिखी गई हिन्दीकी यह प्राकृतिक चिकित्सासम्बन्धी श्रेष्ठ पुस्तक है। मूल्य चार रुपया।

मैं तंदुरुस्त हूं या बीमार ?—इस प्रश्नका उत्तर इस पुस्तकसे लें और दवाके जालसे निकलकर अपना स्वास्थ्य और धन बचाएं। ले० श्री लूई कूने। मूल्य आठ आना।

आदर्श आहार—भोजनसे स्वास्थ्यका क्या सम्वन्ध है और भोजनमें थोड़ा-सा हेर-फेर करके रोगका निवारण कैसे किया जा सकता है, यह विशद रूपसे वतानेवाला एक ज्ञानकोष। मूल्य एक रुपया।

उठो !—ले० स्वामी कृष्णानन्द। इस पुस्तकको पढ़ें और दुःख, परेशानी और मुसीवतोंसे छुटकारा पाकर जीवनको सरल वनायें। मू० १)

बच्चोंका स्वास्थ्य और उनके रोग—वच्चोंको रोगमुक्त करना वहुत सरल है और उन्हें स्वस्थ रखना और भी सरल। यह पुस्तक आपके सामने बच्चोंके रोग और उनके स्वास्थ्यका विषय बिलकुल स्पष्ट कर देगी। मूल्य ३)

सर्दी-जुकाम-खांसी—लेखक—डाक्टर रैस्मस अल्सेकर एम० डी०। इन रोगोंकी चिकित्सा, कारण, उनसे बचनेका रास्ता बतानेवाली एक अपूर्व पुस्तक। मूल्य ।।।)

व्यवस्थापक, आरोग्य-ग्रन्थमाला, गोरखपुर

अगर आप चाहते हों

कि

—आपके घरभरका शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य ठीक रहे,
—दवा-दारूसे पिण्ड छूटे,
—खान-पान-व्यायाम आदिके बारेमें ज़रूरी हिदायतें मिलें,
—भोजनसम्बन्धी खोजोंका नया-से-नया ज्ञान प्राप्त हो,
—नामी प्राकृतिक चिकित्सकोंके लेख पढ़नेको मिलें,
—बिना दवा-दरपनके पुराने रोगोंसे छुटकारा पाए हुओंके बयान उन्हीं-की जबानी जानें,
—'आरोग्य-ग्रन्थमाला'की पुस्तकें तीन चौथाई मूल्यपर मिलती रहें तो

'आरोग्य'

मासिकके ग्राहक बन जाइये। इसका हर अंक स्वतन्त्र पुस्तककी भाँति होता है। वार्षिक मूल्य ५) रुपया। एक अंकका सात आना।

व्यवस्थापक—'आरोग्य', गोरखपुर

प्रकाशन
आरोग्य मन्दिर गोरखपुर